MAED 609 Semester IV

शैक्षिक प्रबंधन एवं प्रशासन

Educational Management and Administration

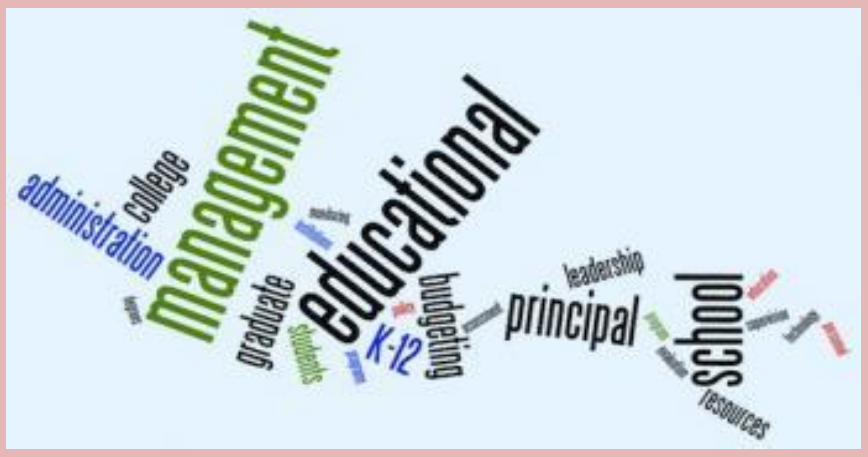

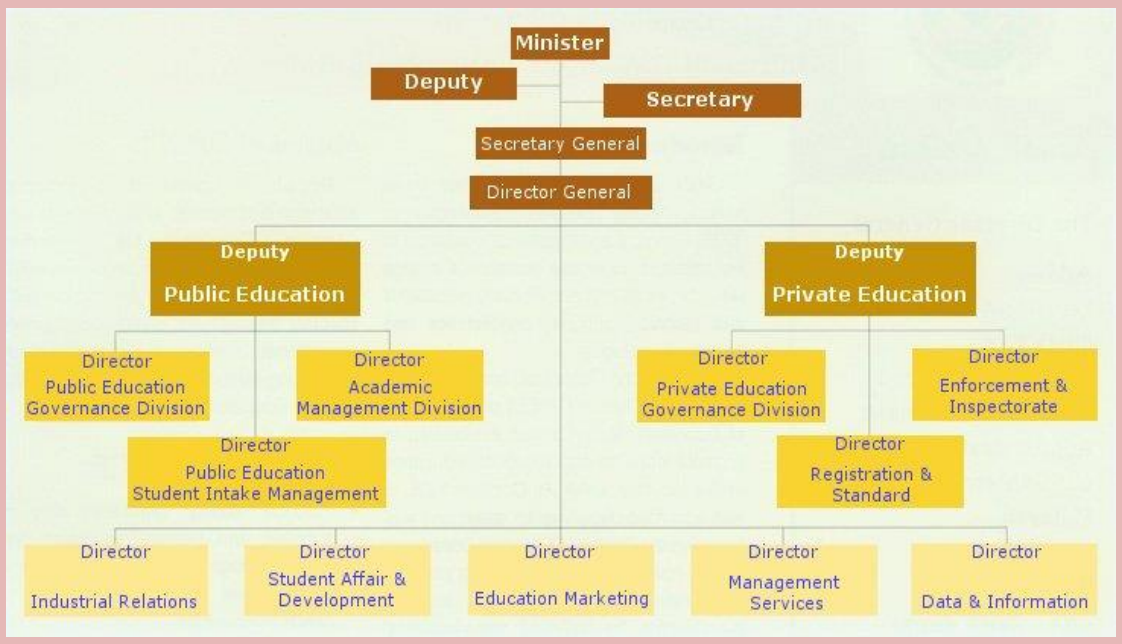

शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड			
प्रोफेसर जे0के0 जोशी निदेशक शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी ,उत्तराखण्ड	**प्रोफेसर एन0 एन0 पाण्डेय(सदस्य)** शिक्षा संकाय एम० जे० पी० रुहेलखंड, विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तरप्रदेश	**प्रोफेसर गिरिजेश कुमार (सदस्य)** शिक्षा संकाय एम० जे० पी० रुहेलखंड, विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तरप्रदेश	**प्रोफेसर रोमेश वर्मा(सदस्य)** शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी ,उत्तराखण्ड
डॉ0 दिनेश कुमार सहायक प्रोफेसर उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 रजनी रंजन सिंह सहायक प्रोफेसर उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 प्रवीण कुमार तिवारी सहायक प्राध्यापक उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	सुश्री ममता कुमारी सहायक प्रोफेसर उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
डॉ0 कल्पना पांडे लखेड़ा सहायक प्राध्यापक उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्रीमती मनीषा पंत परमर्शदाता उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री सिद्धार्थ पोखरियाल संविदा शिक्षक उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक	इकाई सयोजक एवं संपादक
डॉ दिनेश कुमार सहायक प्राध्यापक शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी	**डॉ दिनेश कुमार** सहायक प्राध्यापक शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

इकाई लेखन	इकाई संख्या	इकाई लेखन	इकाई संख्या
डॉ० शिक्षा तिवारी सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग,राजकीय महाविद्यालय , कोटद्वार , उत्तराखण्ड	11, 12	डॉ० एस.पी.अरोरा सहायक प्रोफेसर, , शिक्षा विभाग, बरेली कॉलेज ,बरेली , उत्तरप्रदेश	16 , 17 , 18, 19, 20
डॉ० सोमू सिंह सहायक प्रोफेसर , शिक्षा संकाय काशी हिंदु विश्वविद्यालय , वाराणसी	13 ,14, 15		

ISBN-13-978-81-928871-4-2

समस्त लेखों/पाठों से सम्बंधित किसी भी विवाद के लिए सम्बंधित लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का जूरिसडिक्शन हल्द्वानी (नैनीताल) होगा।

कापीराइट: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय प्रकाशन वर्ष: 2014 पुनः प्रकाशन - 2022

संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक: एम0पी0डी0डी0 , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139, (नैनीताल)

MAED-609 Semester IV

शैक्षिक प्रबंधन एवं प्रशासन

Education Management and Administration

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
1	पर्यवेक्षण: सेवा, प्रक्रिया तथा नेतृत्व	1-23
2	शिक्षा निरीक्षण का अर्थ तथा कार्य	24-41
3	सम्प्रेषणअर्थ:, उद्देश्य एवं प्रकार	42-51
4	प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका एवं उसके प्रकार	52-66
5	सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ तथा शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को कम करने के उपाय	67-76
6	विद्यालय प्रबन्धन	77-91
7	शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम	92-104
08	राज्य में शैक्षिक प्रशासन	105-115
09	शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के कार्य	116-126
10	बेसिक शिक्षा परिषद, माध्यमिक शिक्षा परिषद एवं विश्वविद्यालय के कार्य संरचना	127-136

इकाई 1 पर्यवेक्षण : सेवा , प्रक्रिया तथा नेतृत्व

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3. शिक्षा-पर्यवेक्षण का अर्थ
1.3.1. पर्यवेक्षण की आवश्यकता
1.3.2. पर्यवेक्षण के सिद्धान्त
1.3.3. शिक्षा-पर्यवेक्षण के उद्देश्य
11.3.4. शिक्षा पर्यवेक्षण की विशेषताएँ
1.4. शिक्षा पर्यवेक्षण का उद्गम एवं विकास
1.4.1 भारतवर्ष में पर्यवेक्षण का प्रादुर्भाव
1.5 शिक्षा पर्यवेक्षण का परम्परागत प्रत्यय
1.5.1 व्यापक दृष्टिकोण का प्रारम्भ
1.5.2 शिक्षा पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय
1.5.3 आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषताए
1.6 शिक्षा पर्यवेक्षण का महत्व
1.6.1 शिक्षा पर्यवेक्षण की प्रकृति
1.6.2 शिक्षा पर्यवेक्षण: शैक्षिक नेतृत्व
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न
1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.1 प्रस्तावना

शिक्षा समाज के प्रतिनिधि के रूप में समाज की आवश्यकताओं की परिपूर्ति करती है। आज का समाज क्रमशः भौतिक होता जा रहा है। विज्ञान तथा तकनीकी विकास ने भौतिकता की दिशा को और भी अधिक

तीव्रता प्रदान की है। इससे शिक्षा पर नये-नये दायित्व आ पड़े हैं। इन दायित्वों के कारण विद्यालयों पर अतिरिक्त भार पड़ा है। आज यह निश्चित करना कठिन हो रहा है कि क्या और कैसे पढ़ाया जाये? इन कारणों के उत्तर के लिए नई-नई पाठ्य-वस्तुएँ शिक्षण पद्धतियों, विधियों तथा उपकरणों का प्रयोग प्रारम्भ हुआा है। इससे शिक्षण-प्रक्रिया बड़ी ही जटिल एवं क्लिष्ट हो गई हैं शिक्षा-प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने हेतु इन सभी का समुचित समायोजन, संगठन एवं प्रयोग आवश्यक है। इसके लिए शिक्षा-पर्यवेक्षण की आवश्यकता पड़ती है। शिक्षा-पर्यवेक्षण का प्रमुख उद्देश्य अनेक शिक्षा-प्रक्रियाओं का समुचित समन्वय कर अधिकतमक प्रतिफल प्राप्त करना है । पर्यवेक्षण के द्वारा शैक्षिक क्रियाओं की आवश्यक आवृत्तियाँ रोकी जा सकती हैं, अनेक शैक्षिक क्रियाओं का अपव्यय कम किया जा सकता है तथा शिक्षा को अधिकाधिक मानव-कल्याण का साधन बनाया जा सकता है।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त

- आप शैक्षिक पर्यवेक्षण का अर्थ बता सकेंगें
- पर्यवेक्षण की आवश्यकता को व्यक्त कर सकेगें।
- शैक्षिक पर्यवेक्षण का महत्व विस्तार से समझा सकेगें।
- शिक्षा पर्यवेक्षण की विशेषताएँ जान सकेगें।
- शैक्षिक नियोजन पर्यवेक्षण के उद्देश्य जान सकेगें।
- शिक्षा पर्यवेक्षण का उद्गम एवं विकास से अवगत हो सकेगें।
- शिक्षा पर्यवेक्षण का परम्परागत और आधुनिक प्रत्ययकी व्याख्या कर सकेगें।
- शिक्षा पर्यवेक्षण की प्रकृति की व्याख्या कर सकेगें।
- शिक्षा पर्यवेक्षण के प्रमुख कार्य बता सकेगें।

1.3. शिक्षा–पर्यवेक्षण का अर्थ

शिक्षा प्रशासन के क्षेत्र में कभी-कभी निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण को एक ही अर्थ में लिया जाता है, जबकि इन दोनों में मूलभूत अन्तर हैं शाब्दिक अर्थ में निरीक्षण का अर्थ किसी चीज की बारीकी के साथ जाँच एवं देखरेख करना है जबकि पर्यवेक्षण का अर्थ दूर ऊँचे स्थान से नीचे के स्थानों का अवलोकन करना है। तकीनीकी अर्थ में शिक्षा-पर्यवेक्षण से हमारा तात्पर्य एक ऐसे सुनियोजित कार्यक्रम से है जिसका प्रमुख उद्देश्य शिक्षण-प्रक्रियाओं में उन्नति तथा प्रभावशाली लाना है। फ्रान्सेथ जाम के अनुसार - 'उत्तम शिक्षा-पर्यवेक्षण व्यक्तिगत तथा सामान्य समस्याओं के समाधान हेतु व्यक्तियों की ऊर्जा को रचानात्मक विधियों में संलग्न करने

की प्रक्रिया है।' मलौ एवं मलैया ने अपनी पुस्तक ''शिक्षा प्रशासन एवं पर्यवेक्षण में शिक्षा-पर्यवेक्षण' की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है-

'शिक्षा-पर्यवेक्षण यह प्राविधिक सेवा है जो शिक्षकों को अपनी व्यावसायिक कुशलता वृद्धि के लिए उचित व्यावसायिक नेतृत्व तथा सहयोग प्रदान करती है, शिक्षण स्तर को उच्च बनाने हेतु उन्हें पाठ्यक्रम सुधार से परिचित कराती है एवं अपने छात्रो को और अच्छी तरह समझने, शिक्षण-सामग्री निर्माण करने, शिक्षण विधियों का विकास करने, उचित मूल्यांकन-विधियों का उपयोग करने आदि के कौशल-विकास में सहायक होती हैं। इस दृष्टि से शिक्षा-पर्यवेक्षण एक लोकतंत्रीय तथा सहयोगी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षण-स्तर को उच्च बनाने हेतु शिक्षक, पर्यवेक्षक तथा बालक सभी हिल-मिल कर कार्य करते है।''

इस प्रकार से निरीक्षक एक आलोचक, गलतियाँ निकालने वाला तथा दण्डाधिकारी होता है, किन्तु पर्यवेक्षक एक मित्र, परामर्शदाता, निर्देशनकर्ता तथा शुभचिनतक होता है। पर्यवेक्षक जहाँ कमियों तथा गलतियों की ओर इशारा करता है, वहीं पर वह उनके निराकरण हेतु उपयोगी परामर्श भी देता है। उसका व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होता है।

1.3.1. पर्यवेक्षण की आवश्यकता - शिक्षा-पर्यवेक्षण शिक्षा की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसकी आवश्यकता निम्न कारणों से और भी अधिक बढ़ गई है -

1.सामाजिक आवश्यकता के कारण - आज प्रत्येक समाज क्रमशः भौतिकवादी होता जा रहा है। उसकी आवश्यकताएँ, मान्यताएँ, मूल्य तथा प्रकृति में तीव्र गति से उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहा है। इसका स्पष्ट प्रभाव शिक्षा के स्वभाव एवं प्रकृति पर पड़ रहा है। इससे शिक्षा के क्षेत्र में नई-नई समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। विश्व में लोकतंत्रीय जीवन दर्शन व्यापक रूप से अपनाया जा रहा है। इसमें जाति, रंग आदि का भेदभाव न रखते हुए सभी को समान शैक्षिक अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है। इसके लिए बडे पैमाने पर विद्यालयों की व्यवस्था करने की आवश्यकता है, साथ ही साथ कक्षाओं में छात्रों की संख्या भी आशा से अधिक बढ़ानी है। यह वास्तव में हो भी रहा है। इसके अलावा शिक्षा का भौतिकीकरण भी हो रहा है। इस नये परिवेश में शिक्षा को नई-नई समस्याओं, जैसे-अनुशासनहीनता, व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करना, कक्षाओं में अधिक व्यक्तिगत विभिन्नताओं का होना, लोकतंत्रात्मक दृष्टिकोण का विकास करना आदि का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं के समाधान के लिए शिक्षा का समुचित पर्यवेक्षण करने की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है।

2.अध्यापक पर अधिभार - आज के अध्यापक को पहले की अपेक्षा अधिक कार्य करना पड़ता है। आज का अध्यापक केवल एक अध्यापक ही नहीं है, वरन् वह मित्र, निर्देशक तथा दार्शनिक के रूप में छात्र के समक्ष प्रस्तुत होता है। इस स्थिति में अध्यापक को अनेक कार्य करने पड़ते हैं। वह शिक्षण करता है, व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पता लगाता है, संचयी आलेख पत्र तथा छात्र से सम्बन्धित उपयोगी सूचनाएँ एकत्रित करता है, उसका पथ-प्रदर्शक बनता हे, परिणाम-पत्र बनाता है तथा अन्य अनेक कार्य करता है। इन सहगामी कार्यों के

बढ़ने के साथ ही उसके मूल कार्य शिक्षण में भी तीव्रता के साथ वृद्धि हुई हैं उसे अब कालांशों में से कभी-कभी तो सभी और सामान्यतया छः व सात कालांश शिक्षण करना पड़ता है। अब उसे कक्षा में दस-पन्द्रह छात्रों के स्थान पर पचास-पंचास और इनसे भी अधिक छात्रों को पढ़ाना पड़ता है। अध्यापक अपने इस अधिभार को सफलता एवं सुविधापूर्वक वहन कर सके, इसके लिए समुचित शिक्षा-पयवेक्षण की आवश्यकता है। शिक्षा-पर्यवेक्षण के द्वारा उसकी अनेक समस्याएँ सुलझाई जा सकती हैं।

3.नवीन शिक्षण विधियों का विकास - लोकतांत्रिक शिक्षा के अन्तर्गत आजकल अनेक आधुनिक शिक्षण विधियों का विकास हो चुका है। इस नवीन विधियों का कक्षा शिक्षण में व्यावहारिक प्रयोग बिना पूर्व प्रशिक्षण के सम्भव नहीं है। साथ ही साथ नवीन शिक्षण पद्धतियों के प्रयोग, सफलता, असफलता तथा सुधारों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

4.अप्रशिक्षित अध्यापक - तीव्र गति से बड़ती हुई शैक्षिक सुविधाओं की पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में अप्रशिक्षित अध्यापकों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ी है। अप्रशिक्षित अध्यापकों को शिक्षण के आधारभूत सिद्धान्तों तथा प्रयोगों का ज्ञान तथा कौशल प्रदान किया जा सकता है।

5.प्रशिक्षित अध्यापकों का अभिनवीकरण - शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षत का काल छोटा होता हैं वहाँ शिक्षण कौशल का पूर्ण विकास नहीं किया जा सकता है। सेवारत स्थिति में सामयिक शिक्षा पर्यवेक्षण के द्वारा इन प्रशिक्षित शिक्षकों में वांछनीय शिक्षण कौशल विकसित किया जा सकता है।

6.विद्यालय कार्यों में वृद्धि - आज विद्यालय का कार्य केवल विषयगत शिक्षा प्रदान करना मात्र ही नहीं रह गया है, वरन् आज के विद्यालय से यह आशा की जाती है कि वह छात्र के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करे। इस कार्य हेतु विद्यालय के शिक्षा के अलावा और अनेक कार्य सम्पादित करने पड़ते हैं। उसे अनेक पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था एवं संचालन करना पड़ता है छात्रों में लोकतांत्रिक भावनाओं का विकास करने हेतु आवश्यक कदम उठाने पड़ते हैं तथा व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ती है। इन कार्यों की सफलता भी उपयुकत शिक्षा पर्यवेक्षण पर निर्भर है।

1.3.2. पर्यवेक्षण के सिद्धान्त - पर्यवेक्षण के सिद्धान्तों की विभिन्न विद्धानों ने अलग-अलग चर्चा की है। कुछ विद्वानों ने पर्यवेक्षण के सिद्धान्तों की एक लम्बी सूची गिना दी है तो कुछ विद्वानों ने इनकी संख्या बडी ही कम रखी है। आर. बर्टन, तथा बुकनर ने पर्यवेक्षण के चार सिद्धान्त बताये हैं -

1. पर्यवेक्षण सैद्धान्तिक रूप से ठोस हो
2. पर्यवेक्षण लोकतांत्रिक हो,
3. पर्यवेक्षण वैज्ञानिक हो,
4. पर्यवेक्षण रचनात्मक हो।

1.3.3. शिक्षा-पर्यवेक्षण के उद्देश्य - शिक्षा-पर्यवेक्षण के द्वारा अग्रांकित उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयास किये जाते हैं-

1. शिक्षकों के सम्मुख शिक्षा के उद्देश्य, मूल्य तथा उपलब्धियों को सुनिश्चित तथा स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करना।

2. शिक्षकों की व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि कर उनके शिक्षण को प्रभावकारी बनाना।

3. शिक्षकों को छात्रों तथा समाज की आवश्यकताओं से परिचित कराकर उनकी परिपूर्ति करने हेतु अध्यापकों को प्रोत्साहित करना।

4. शिक्षकों को उनकी योग्यता, शिक्षा तथा क्षमताओं के अनुसार कार्य विभाजन करना।

5. शिक्षकों को समुचित समायोजन करने में सहायता देना।

6. अप्रशिक्षित शिक्षकों को शिक्षण के आधारभूत सिद्धान्तों तथा प्रयोगों से परिचित करना।

7. शिक्षकों के व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विद्यालय में आवश्यक वातावरण तथा शिक्षण सुविधाएँ प्रदान करना।

1.3.4. शिक्षा पर्यवेक्षण की विशेषताएँ

आधुनिक पर्यवेक्षण द्वारा छात्रों एवं अध्यापकों के व्यक्तित्व का सर्वाधिक विकास किया जा सकता है। आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषतायें जनतान्त्रिक प्रणाली के अनुकूल हैं। इनकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं। -

1. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय शिक्षा विकास की प्रक्रिया है- आधुनिक प्रत्यय के द्वारा शिक्षा का पूर्ण विकास पर्यवेक्षण द्वारा ही सम्भव है। इसकी नवीन विधियों, प्रविधियों, उपकरणों एवं आयामों द्वारा शिक्षा की सभी क्रियाओं को विकसित किया जाता है।

2. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय प्रजातान्त्रिक - पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय के अन्तर्गत पर्यवेक्षण एक सहयोगी, निर्देशक, परामर्शदाता तथा मैत्रीपूर्ण रूप से अपने सुझाव शिक्षको को दिये जाते हैं। अतएव पर्यवेक्षण का आधार प्रजातांत्रिक है।

3. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय एक तकनीकी सेवा है - शैक्षिक पर्यवेक्षण के द्वारा मौलिक, रचनात्मक एवं वस्तुनिष्ठ शैक्षिक क्रियाओं को पूरा किया जाता है। अतएव इसको एक तकनीकी सेवा द्वारा सम्बोधित किया गया है।

4. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय एक परामर्शदाता के रूप मे कार्य करता है - शैक्षिक पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय के अन्तर्गत पर्यवेक्षक का प्रत्येक कार्य एक सहयोगी एवं मैत्रीपूर्ण परामर्शदाता के रूप में होता है। उसके सुझाव उपयोगी होते हैं।

5. इसके द्वारा वस्तुनिष्ठ तथा विश्वसनीय पर्यवेक्षा पर बल दिया जाता है - शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रत्येक क्रिया वस्तुनिष्ठ तथा विश्वसनीय रूप में सम्पन्न की जाती है। पर्यवेक्षण के द्वारा दिये गये सुझाव एवं विधियाँ पूर्णतः विश्वसनीय होते हैं।

6. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय विद्यालय अन्तःक्रिया का गत्यात्मक रूप है- इसके द्वारा विद्यालय की सभी अन्तः क्रियाओं को निरन्तर आगे बढ़ाया जाता है। तथा समाज के अनुरूप परिवर्तित किया जाता है।

7. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय योजनाबद्ध पर्यवेक्षण पर बल देता है-पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय शिक्षा के सभी कार्यों को नियोजित रूप प्रदान करता है तथा इसकी रूपरेखा को सुनिश्चित करता है।

8. शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय वैज्ञानिक विधि प्रदान करता है - आधुनिक पर्यवेक्षण प्राचीन तथा परम्परागत विधियों में विश्वास नहीं रखता। इसके द्वारा जो विधि अथवा नवीन पद्धति अपनाई जाती हैं वह पूर्णतया परीक्षित एवं विश्वसनीय होती है। आधुनिक पर्यवेक्षण में वैज्ञानिक विधि को अपनाया जाता है। इस पर्यवेक्षण में विभिन्न कार्यक्रमों में समस्या का चयन, तथ्यों का संकलन तथा वर्गीकरण, परिकल्पना का निर्माण, व्याख्या एवं सामान्यीकरण, सम्भावित विधियो का चयन आदि वैज्ञानिक विधियों के सोपानों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसके द्वारा प्रत्येक कार्य का गहन परीक्षण तथा गम्भीर विचार करके किया जाता है।

1.4 शिक्षा पर्यवेक्षण का उद्गम एवं विकास

शिक्षा पर्यवेक्षण का प्रत्यय अधिक प्राचीन नहीं है। सन् (1909) ई0 से पूर्व इसका अस्तित्व ही नहीं था। सर्व प्रथम इंग्लैड के बोस्टन नामक नगर में इस शब्द का प्रयोग किया गया। वहाँ विद्यालयों का निरीक्षण कार्य करने के लिये सन् (1909) ई0 में एक विशेष समिति की स्थापना की गयी जिसमें कुछ चुने हुए धर्माधिकारी, कुछ धनिक व्यक्ति सम्मिलित किये गये। इस समिति का कार्य सामान्य रूप से भवन की देखभाल करना, विद्यालय के लिये धन जुटाना तथा शिक्षकों की नियुक्ति पर ध्यान देना था। इस समिति के अधिकांश सदस्य अशिक्षित एवं अप्रशिक्षित होते थे उनमें कार्यक्षमता अधिक नहीं होती थी, इसीलिये वे निरीक्षण कार्य को भी अपर्याप्त एवं अनियन्त्रित ढंग से करते थे, कुछ समय पश्चात् निरीक्षण की आवश्यकता पर और अधिक बल दिया जाने लगा। सन् (1914) ई0 से निरीक्षकों के लिये शैक्षिक योग्यता को अनिवार्य माना जाने लगा। सन् (1921) ई0 से निरीक्षण के क्षेत्र में शिक्षित कार्य, शिक्षण विधि एवं शिक्षण के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अपने सुझाव दिये। सन् 1922 ई0 में बर्टन ने निरीक्षण के महत्व पर अधिकाधिक ध्यान आकृष्ट किया। बर्टन ने शिक्षा के सुधार कार्यक्रमों के निरीक्षण के कार्य को सर्पोपरि माना। बर्टन का मत था कि शिक्षण कार्य में सुधार तथा उन्नति के लिये, शिक्षक कार्य में सुधार करने के लिये, विषय एवं पाठ्यवस्तु का चयन करने के लिये, परीक्षण तथा मापन के लिये तथा शिक्षकों की योग्यताओं के आधार पर उनका श्रेणीकरण करने के लिये निरीक्षण का अत्यधिक महत्व है। इस प्रकार निरीक्षण के प्रत्यय का उद्भव इंग्लैंड में हुआ जो आगे चलकर पर्यवेक्षण के स्वरूप में परिवर्तित होता चला गया।

1.4.1 भारवर्ष में पर्यवेक्षण का प्रादुर्भाव

भारतवर्ष में पर्यवेक्षण का प्रारम्भ पाश्चात्य शिक्षण-प्रणाली का अनुकरण करने के फलस्वरूप ही हुआ। भारतवर्ष में वुड डिस्पैच की संस्तुतियों के फलस्वरूप प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा मण्डलों तथा निरीक्षण मण्डलों की स्थापना की गयी। पर्यवेक्षण के सन्दर्भ में वुड डिस्पैच की संस्तुति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह संस्तुति इस प्रकार थी -

''हमारी शिक्षा-प्रणाली का भविष्य में अत्यावश्यक अंग निरीक्षण प्रणाली का उचित स्वरूप होगा। हमारी इच्छा है कि सरकार द्वारा चलाये गये विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में निरीक्षकों की पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की जाय जो समय-समय पर इन विद्यालयों की गतिविधियों की आख्या भी प्रस्तुत कर सकेंगे। ये निरीक्षक इन विद्यालयों में परीक्षा सम्बन्धी कार्यों में भी सहायता करेंगे।''

इन सुझावों का परिणाम यह हुआ कि शिक्षण कार्य की गुणात्मकता को परखने के लिये तथा विद्यालयों को दिये गये अनुदानों का उचित प्रयोग परखने के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति की गयी। निरीक्षकों के अधिकारों में भी कुद वृद्धि की गयी जिसके फलस्वरूप निरीक्षक शिक्षण संस्थाओं में आतंक भी उत्पन्न करने लगे। वास्तव में यह समय भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का था और निरीक्षकों को अधिक शकित एवं अधिकारों को देने का आशय तत्कालीन राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलना था। सन् 1921 ई0 में महात्मा गाँधी जी के नेतृत्व में आन्दोलन हुए और पर्याप्त संख्या में राष्ट्रीय संस्थाएं खोली गयी। सन् (1919) ई0 में सैडलर-कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया था।

''अधिकांश रूप में निरीक्षण द्रुत गति से किया जाता हे, उसमें सौहार्दपूर्ण सुझावों का अभाव है। शिक्षण-पद्धति तथा संगठन सम्बन्धी सुधार की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता जो विद्यालयों के लिये अत्यावश्यक है''।

वास्तव में इन आयोगों तथा समय-समय पर नियुक्त समितियों के प्रतिवेदनों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत में सुयोग्य एवं प्रशिक्षित निरीक्षकों का सर्वथा अभाव है जिसके कारण यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था दूषित तथा प्रभाव शून्य है। इस प्रतिवेदना का एक प्रभाव यह भी हुआ कि निरीक्षण के स्थान पर पर्यवेक्षण के महत्व को समझा जाने लगा। निरीक्षक के कार्यों में सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को सम्मिलित किया जाने लगा। सन् 1934 ई0 में अंग्रेजी सरकार द्वारा दो परामार्शदाता वुड तथा अबोट को भारतवर्ष के विद्यालयों में निरीक्षण करने के लिये भेजा गया। उनके कथन का सारांश निरीक्षण के कार्य में सुधार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उनका कथन इस प्रकार था-

"The chief duty of the inspector is to inspect the schools. He must do this sympahetically and give advice based on his own knowledge and experience, which will help the teacher to make their schools enlightened and humanized institutions. He

should feel free and, of course, be qualified to praise or to criticize. But his criticism should be calculated to encourage and not to intimidate."

आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा प्रतिवेदन में निरीक्षकों के कार्यों को अत्यधिक परम्परागत तथा मशीनवत् बताया गया तथा उसमें पर्याप्त सुधार करने के लिये सुझाव भी दिये गये। इसी क्रम में सन् (1952) ई0 में ए0एल0 मुदालियर, माध्यमिक शिक्षा आयोग के अध्यक्ष थे। उन्होंने भी अपनी रिपोर्ट में निरीक्षण की तत्कालीन स्थिति को सोचनीय बताते हुए इस प्रकार कहा -

"It was pointed out by several witnesses that inspections were perfunctory, that the time spent by the inspector at any particular place was insufficient, that the greater part of his time was taken up with routine administration. – Narendra Dev.

''माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों के आधार पर पर्यवेक्षक के महत्व को और अधिक स्वीकार किया गया। यह धारणा बनी कि शिक्षा-संस्थाओं का उचित निर्देशन पर्यवेक्षक द्वारा ही दिया जा सकता है। पर्यवेक्षकों की गुणात्मकता एवं शक्ति में वृद्धि करने के प्रयास किये गये। निरीक्षक को विद्यालयों के प्रशासनिक कार्यों के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी स्वीकार किया गया। माध्यमिक शिक्षा आयोग की प्रमुख संस्तुतियां इस प्रकार थी-

1. कम से कम दस वर्षों के अनुभवी अध्यापकों, प्रधानाचार्यों तथा प्रशिक्षण महाविद्यालयों, सुप्रशिक्षित प्रवक्ताओं को निरीक्षण करने के लिये भेजा जाना चाहिए।
2. जो निरीक्षक नियुक्त हों, उन्हें शैक्षिक तथा प्रशासनिक दोनों प्रकार के कार्यों का निरीक्षण करने के अतिरिक्त विद्यालयों के हिसाब-किताब तथा कार्यलय से सम्बन्धित सभी मामलों का निरीक्षण करना चाहिए।
3. निरीक्षकों के साथ प्रशासनिक कर्तव्यों की देख-भाल के लिये क्षमतायुक्त व्यक्तियों की नियुक्ति होनी चाहिए।
4. मुख्य निरीक्षक के साथ विशिष्ट योग्यता प्राप्त टोली निरीक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए जिससे विद्यालय के शिक्षण कार्य का गहराई से निरीक्षण किया जा सके।
5. निरीक्षकों का कर्त्तव्य विद्यालयों की उन्नति में सहयोग देना होना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा-आयोग की संस्तुतियों को भारतीय सरकार द्वारा स्वीकार किया गया। इसके साथ ही पर्यवेक्षण के महत्व पर दृष्टि रखते हुए भारतीय सरकार ने पर्यवेक्षण का गहन अध्ययन करने के लिये इस आयोग को पुनः प्रेरित किया। इसी उद्देश्य से सरकार द्वारा See Education Project Team की नियुक्ति की गयी। इस टीम में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के व्यक्तियों को भी सम्मिलित किया गया जिनकी प्रमुख संस्तुतियाँ निम्नलिखित थी -

1. प्रशासन की भावना में शीध्र परिवर्तन किया जाना चाहिए। निरीक्षकों के कर्त्तव्यों में नियमों तथा कानूनों तथा मशीनवत् कार्य प्रणाली की अपेक्षा मानवीय सम्बन्धों की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

2. निरीक्षक का कर्त्तव्य निर्णय देने की अपेक्षा परामर्श देने का अधिक होना चाहिए।

3. निरीक्षण कार्य की क्षमता में वृद्धि करने के लिये निरीक्षकों को विशिष्ट प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

4. निरीक्षक के लिये प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

5. निरीक्षक के दौनिक प्रशासनिक कार्यों को किसी अन्य सहायक निरीक्षक को सौंप दिया जाना चाहिए।

6. विद्यालय को स्वतंत्रता अधिक दी जानी चाहिए जिससे प्रत्येक विद्यालय ऐसी उचित योजनाओं की व्यवस्था कर सके जिसमें अध्यापक भाग ले सकें और विद्यालय के कार्यों में सहायता देने की योग्यता प्राप्त कर सकें।

उपर्युक्त सभी संस्तुतियों का प्रभाव हुआ कि विद्यालयों में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण की प्रक्रिया पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा। 'निरीक्षण' शब्द में व्याप्त भय तथा आशंका को दूर कर के परामर्श तथा सुझाव को अधिक महत्व दिया जाने लगा।

बोध प्रश्न - 1

1. सन् (1914) ई0 से निरीक्षकों के लिये ..... को अनिवार्य माना जाने लगा।
2. किस कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया था।

''अधिकांश रूप में निरीक्षण द्रुत गति से किया जाता हे, उसमें सौहार्दपूर्ण सुझावों का अभाव है। शिक्षण-पद्धति तथा संगठन सम्बन्धी सुधार की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता जो विद्यालयों के लिये अत्यावश्यक है''।

1.5 शिक्षा पर्यवेक्षण का परम्परागत प्रत्यय

शिक्षा-प्रशासन का स्वरूप सैदव से एक ही स्थिति में नहीं रह सका। आज तो पर्यवेक्षण का प्रत्यय पर्याप्त आधुनिक, परिष्कृत एवं महत्वपूर्ण दिखाई पड़ता है। परन्तु पूर्व समय में पर्यवेक्षण का परम्परागत रूप अत्यन्त संकीर्ण, सुझाव रहित तथा आधिकारिक था। इस प्रकार के प्रत्यय से सम्बन्धित कुछ बातों का उल्लेख आवश्यक है।

परम्परागत प्रत्यय - शिक्षा पर्यवेक्षण के प्राचीन रूप को ही परम्परागत प्रत्यय के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है। वास्तव में यह ''पर्यवेक्षण'' निरीक्षण ही था। सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षक एक साधारण व्यक्ति होता था जिसका मुख्य कर्तव्य सरकार द्वारा दिये गये अनुदानों का निरीक्षण करना था। निरीक्षक के प्राचीन तथा परम्परागत विचारों के अनुसार ही शिक्षा का कार्य संचालित होता था। निरीक्षण कार्य में शासक तथा शासित भावना प्रबल होती थी। निरीक्षक का ध्यान शिक्षक की त्रुटियों को खोजने की ओर होता था, छात्रों के

विकास कार्य के प्रति उसका लगाव नहीं होता था। वास्तव में यह स्थिति केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु विश्व के सभी देशों में व्याप्त थी। आई तथा नेटजर ने इस परम्परागत निरीक्षक के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि-

''निरीक्षण का मुख्य सम्बन्ध विद्यालय प्रशासन तथा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सभाएं करने से अधिक होता हथा। शिक्षण सामग्री की उन्नति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था।''

परम्परागत शिक्षा पर्यवेक्षण के दोष - परम्परागत पर्यवेक्षण में केवल दोष अधिक थे। इसके अन्तर्गत निरीक्षक अपनी तानाशाही प्रवृत्ति को अपनाकर शिक्षण संस्थाओं में दुरत गति से कार्य करते थे तथा अपने मिथ्या अहं की सन्तुष्टि करके ही निरीक्षक के उत्तरदायित्व को पूरा करना समझते थे। इस प्रकार के निरीक्षण के दोषों का संक्षेप में इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है -

1. परमपरागत पर्यवेक्षण में जनतान्त्रिक सिद्वान्तों का उल्लंघन किया जाता था।

2. शिक्षाधिकारियों का ध्यान शासन भावना की ओर अधिक तथा छात्रों की सीखनें की प्रवृत्ति में वृद्धि करने की ओर कम ध्यान होता था।

3. प्राचीन विचारों से पोषित निरीक्षकों के रूढिगत विचारों से शिक्षा प्रक्रिया प्रभावित होती थी जिसमें विकास की प्रक्रिया लुप्त ही रहती थी।

4. शिक्षकों को परम्परागत शिक्षा-प्रणाली को अपनाने के लिये विवश किया जाता था तथा उन्हंे नवीन सुझावों तथा सुधारों से वंचित ही रखा जाता था।

5. परम्परागत निरीक्षण का कुप्रभाव शिक्षकों की सम्मान भावना पर आघात करने वाला था।

6. शिक्षकों को शैक्षिक कार्यों में पहल करने के लिये किसी प्रकार की प्रेरणा नही दी जाती थी।

7. परम्परागत निरीक्षण की व्यवस्था मानवीय सम्बन्धों की श्रेष्ठता में बाधक होती थी।

8. इस प्रकार के परम्परागत निरीक्षण में सर्वत्र अपर्याप्त, असुरक्षा, निराशा, तथा आशंका व्याप्त होती है। वस्तुतः यह दशा मानसिक स्वास्थ्य के सिद्धान्तों के प्रतिकूल थी।

9. परम्परागत पर्यवेक्षण के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिशु मनोविज्ञान आदि कि पूर्ण अवहेलना की जाती थी।

10. इस प्रकार के पर्यवेक्षण में निरीक्षकों द्वारा शिक्षकों के छिद्रान्वेषण कार्य को ही अधिक महत्व दिया जाता था।

11. परम्परागत शैक्षिक पर्यवेक्षण में स्वतंन्त्रता, अग्रदर्शिता तथा मौलिकता के सिद्धान्तों का हनन करके अनेक स्थान पर दमन, नियन्त्रण तथा मानसिक दासता की नीतियों का अधिक रूप में अपनाया जाता था।

1.5.1 व्यापक दृष्टिकोण का प्रारम्भ - परम्परागत पर्यवेक्षण के दोषों की ओर धीरे-धीरे जनता तथा शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित होता गया। शैक्षिक सुधार, छात्र व्यक्तित्व-विकास, शिक्षक तथा शिक्षण कार्यों में सुधार करने के लिये योजनाएं बनाई जाने लगी। पर्यवेक्षण को शिक्षा का विकास करने वाली प्रक्रिया समझा जाने लगा तथा शिक्षकों को शिक्षण कला में दक्ष बनाने के सम्बन्ध में विचार किया जाने लगा। इस सम्बन्ध मे जॉन ए बर्रकी ने सुझाव दिया -

''क्योंकि सम्पूर्ण पर्यवेक्षण ही प्रकृतिवश शिक्षण प्रक्रिया से सम्बन्धित है, अतएव विद्यालय पर्यवेक्षक को भी शिक्षकों का शिक्षक समझा जाने चाहिए।''

इन सभी सुधारों तथा सुझावों का स्वागत करने के उपरान्त भी अभी तक शैक्षिक पर्यवेक्षण का क्षेत्र उन्नत नहीं हो पाया था। इसका मुख्य कारण चिकित्सिक साधनों का अभाव था। पर्यवेक्षण के अभावों की खोज तो हो चुकी थी अर्थात् इस ओर ध्यान नहीं दिया गया था। विश्व के सभी देशों में पर्यवेक्षण के रूप में नवीनता तथा आधुनिकता लाने के लिये भरपूर प्रयास किया जाने लगा। नीचे की पंक्तियों में आधुनिक विशेषताओं से युक्त शैक्षिक पर्यवेक्षण के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा रहा है -

1.5.2 शिक्षा पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय

शैक्षिक पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय में सहयोग की भावना तथा सामुहिक प्रयास को अधिक महत्व दिया जाता है। केवल भारतवर्ष में ही नहीं अपितु ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमरीका आदि देशों में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधार हुए। इन सुधारों में पर्यवेक्षण के क्षेत्र में भी आशाजनक सुधार करने पर ध्यान आकर्षित किया गया। इन सुधारों की आवश्यकता भी परिस्थितिवश ही प्रतीत हुई तथा भारतवर्ष की स्वतंन्त्रता प्राप्ति के साथ-साथ शैक्षिक सुविधाओं में भी विस्तार किया गया। छात्र संख्या में भी वृद्धि हुई तथा शिक्षा के प्रति जन-जागरण भी अधिक होने लगा। सरकारी सहायता से विद्यालय भवनों का निर्माण किया गया तथा शिक्षकों की नियुक्ति में भी वृद्धि की गयी। शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यक्रम, शिक्षा के उद्देश्य तथा शिक्षक-प्रशिक्षण को भी विकसित किया गया। इन सभी बातों का प्रभाव यह हुआ कि वर्तमान युग में शैक्षिक प्रशासन तथा पर्यवेक्षण को एक ऐसी प्रक्रिया समझा जाने लगा जो विद्यालयों की दशा को उत्तम बनाने में सहायक हो सकती है।

शिक्षा के प्रमुख आधारों में समाजशास्त्रीय आधार को प्रमुख रूप में स्वीकार किया जाता है। इसी विचार के अनुसार शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का साधन भी माना गया है। बालकों के सर्वांगीण विकास में अध्यापक, प्रधानाचार्य तथा विद्यालय का प्रमुख हाथ होता है। अनेक विचार गोष्ठियों के परिणाम स्वरूप् पर्यवेक्षण का कार्य विद्यालय की उन्नति में निश्चित रूप से सहायक होता है। शिक्षा-शास्त्रियों तथा उच्च कोटि के विचारकों ने पर्यवेक्षण के सम्बन्ध में नये ढंग से विचार करना आरम्भ किया। पर्यवेक्षण को प्रधानाचार्य तथा अध्यापकों के मिले-जुले प्रयास का परिणाम ही अधिक समझा जाने लगा। सन् 1956 में मद्रास में प्रधानाचार्या की एक प्रमुख गोष्ठी में पर्यावरण पर गम्भीर विचार करते हुए यह मत स्पष्ट किया गया कि प्रभावशाली पर्यवेक्षण के अन्तर्गत आलोचना की अपेक्षा निर्देशन देना अधिक होता है, उसमें रचनात्मक सुझावों को

अधिक महत्व दिया जाता है, प्रधानाचार्य का आदर्श एवं अनुकरणीय चरित्र ही अध्यापकों को प्रभावित करने में अत्यधिक सक्षम सिद्ध हो सकता है।

शैक्षिक पर्यवेक्षण के आधुनिक प्रत्यय का मूल उद्देश्य शिक्षक की सहायता करना ही है। इसके अतिरिक्त कक्षा भवन का पर्यवेक्षण, पाठयक्रम विस्तार, मूल्यांकन एवं परीक्षा, बालक का मनोवैज्ञानिक अध्ययन आदि कार्यों में सुधार करना भी वर्तमान पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य है। आधुनिक प्रत्यय की सर्वाधिक विशेषता सहयोग की भावना है। इस सम्बन्ध में एन0ई0आर0टी0 दिल्ली (1966) की एक रिपोर्ट में भी संकेत किया गया।

''पर्यवेक्षण शिक्षकों की वैयक्तिक योग्यताओं की अभिवृद्धि में सहायक होता है। यह ऐसी विशिष्ट सेवा है जो छात्रों को समझने तथा छात्रों का चहंमुखी विकास करने में सहायक सिद्ध होती है।''

वास्तव में शैक्षिक पर्यवेक्षण का आधुनिक प्रत्यय शिक्षण सामग्री की उन्नति करने की प्रक्रिया से ही प्रारम्भ होता है। तथा इसके अनतर्गत शिक्षकों की कार्यक्षमता की अभिवृद्धि की ओर अधिकाधिक ध्यान आकर्षित किया जाता है। आधुनिक शैक्षिक पर्यवेक्षण की कुछ ऐसी विशेषतांए हैं जिन्हें स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है।

1.5.3 आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषताएँ- आधुनिक पर्यवेक्षण की विशेषताएं जनतान्त्रिक प्रणाली के अनुकूल है। इस प्रकार के पर्यवेक्षण द्वारा छात्रों की तथा अध्यापकों के व्यक्तित्व का अधिक विकास किया जा सकता है। कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. सहयोग की भावना- आधुनिक पर्यवेक्षण में सहयोग की भावना पर बल दिया जाता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक एवं प्रधानाचार्य तथा अनय पर्यवेक्षक मिल-जुल कर समस्या का समाधान करते हैं। इस प्रक्रिया से कार्यकर्त्ताओं में आत्म-विश्वास में वृद्धि होती है। पर्यवेक्षण द्वारा शिक्षकों को सहयोग देने के लिये उत्साहित किया जाता है।

2.अधिक जनतान्त्रिक तथा अभिवृत्यात्मक- जनतन्त्र के मुख्य सिद्धान्त ''समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृभाव'' आदि हैं। आधुनिक पर्यवेक्षण में समानता तथा स्वतन्त्रता के अवसर प्रदान किये जाते हैं। वास्तव में यह पर्यवेक्षण भयमुक्त तथा आशंकामुक्त होता है। इसके अन्तर्गत पर्यवेक्षक का रूप भयावह तथा आंतककारी न होकर सौहार्दपूर्ण होता है। यह पर्यवेक्षण आधुनिक प्रवृतियों पर आधारीत हैं। विद्यालय को आजकल एक ''लघु समाज'' कहा जाता हे। विद्यालय रूपी समाज में जनतन्त्रात्मक प्रणाली के अनुरूप पर्यवेक्षण सजग रहता है। आधुनिक पर्यवेक्षण में सहयोगात्मक भावना व्याप्त होने के कारण छात्रों तथा शिक्षकों की विभिन्न प्रवृतियों का अधिकाधिक विकास करना, पर्यवेक्षण के स्वस्थ दृष्टिकोण के अनुकूल शिक्षण विधि में परिवर्तन करना, आदि की ओर आधुनिक पर्यवेक्षण सजग रहता है। आधुनिक पर्यवेक्षण में सहयोगात्मक भावना व्याप्त होने के कारण छात्रों तथा शिक्षकों की विभिन्न प्रवृतित्तयों को उचित रूप में विकसित करने के पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाते है।

3. वैज्ञानिक विधि- आधुनिक पर्यवेक्षण प्राचीन तथा परम्परागत विधियों में विश्वास नहीं रखता। इसके अन्तर्गत जो विधि अथवा नवीन पद्धति अपनाई जाती है वह पूर्णतया परीक्षित तथा विश्वसनीय होती है। आधुनिक पर्यवेक्षण में वैज्ञानिक विधि को अपनाया जाता है। पर्यवेक्षण के विभिन्न कार्यक्रमों में ''समस्या का चयन, तथ्यों का संकल्न तथा वर्गीकरण, सम्भावित विधियों का चयन, परिकल्पना का निमार्ण, व्याख्या तथा सामान्यीकरण'' आदि वैज्ञानिक विधि के सोपानों पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

4. रचनात्मक- आधुनिक पर्यवेक्षण का किसी एक ही व्यक्ति के आदेष पर संचालन नहीं किया जाता है। इस प्रकार के पर्यवेक्षण में सुधार पर ध्यान दिया जाता है जिसके लिये सभी सम्बन्धित व्यक्तियों का परामर्श लिया जाता है, उनकी मौलिकता तथा रचनात्मकता को विकसित करने के लिये स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। शिक्षण विधि तथा शिक्षण सामग्री में नवीन प्रयोगों को करने के लिये शिक्षकों को उत्साहित किया जाता है। शिक्षकों की अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास करने के लिये आधुनिक पर्यवेक्षण पूर्ण सहयोग प्रदान करता है।

5.नेतृतव की क्षमताओं के विकास में सहायक- आधुनिक पर्यवेक्षण दमन नीति से दूर होता है। इसीलिये यह पर्यवेक्षण शिक्षकों तथा छात्रों की नेतृत्व शक्ति के विकास में सहायक होता है। मुख्य पर्यवेक्षण अपनी सहायता के लिये अन्य पर्यवेक्षण की नियुक्ति करता है। जिससे अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व का भी विकास होता है। विद्यालयों में उप प्रधानाचाग्र, क्रीडाध्यक्ष, पुस्तकालयाध्यक्षक, पाठ्येतर विभिन्न कार्यक्रमों ''वाद-विवाद, संगीत, नाटक'' आदि के अध्यक्ष नियुक्त किये जाते हैं। इन कार्यक्रमों का संचालन सभी व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुकूल स्वतन्त्र वातावरण में करते हैं जिससे उन्हें नेतृत्व शक्ति को विकसित करने का प्रशिक्षण भी मिलता है। छात्रों को भी अनेक कार्यों के प्रति उत्तरदायी बना कर उन्हें नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार आधुनिक पर्यवेक्षण शक्ति के विकास में पूर्णरूपेण सहायक होता है।

6. वस्तुनिष्ठ तथा अधिक प्रभावशली- आधुनिक पर्यवेक्षण के समस्त कार्यक्रमों में वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया जाता है। इसलिये इस पर्यवेक्षण के कार्यक्रमों में अधिक वस्तुनिष्ठता एवं विश्वनीयता होती है। सभी व्यक्तियों का आधुनिक पर्यवेक्षण के प्रति आधिक लगाव तथा अपनापन होता है। यह पर्यवेक्षण छात्रों तथा शिक्षकों के हृदय पर शीघ्र तथा स्थायी प्रभाव डालता है। विचार स्वतन्त्रता, सहयोग, समन्वय, रचनात्मक आदि गुणों के कारण भी आधुनिक पर्यवेक्षण अधिक प्रभावकारी होता है।

7. नवीन विधि, अनुसन्धान एवं आयाम हेतु सहायक- आधुनिक पर्यवेक्षण की विधियाँ परम्परागत पर्यवेक्षण की विधियों से सर्वथा पृथक हैं। इसमें आकस्मिक निरीक्षण, छिद्रान्वेषण, व्यक्तित्व प्रदर्शन के स्थान पर अनौपचारिक निरीक्षण, परामर्श तथा शिक्षक-सम्मान को अधिक उतसाहित किया जाता है। पर्यवेक्षण आज ''चोर-सिपाही'' के खेल जैसा न होकर सहयोगी, आशंका रहति तथा सीखने वाला अधिक होता हैं, उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता है तथा उनके निष्कर्षों को अपनाने का प्रयास किया जाता है। विज्ञान तथा तकनीकी द्वारा आविष्कृत नवीन आयामों को भी आधुनिक पर्यवेक्षण में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इन सभी नवीन प्रयोगों तथा आयामों को अपनाकर आधुनिक पर्यवेक्षण के शिक्षा स्तर को ऊपर उठाने के लिये अधिकाधिक उपयोगी

बनाया जाता है। वस्तुतः इस पर्यवेक्षण को अधिक प्रविधि युक्त कहा जा सकता है। शिक्षण कौशल की वृद्धि में विभिन्न तकनीकियों के निरन्तर प्रयोग में आधुनिक पर्यवेक्षण विश्वास रखता है। आधुनिक पर्यवेक्षण यह मानकर ही अधिक परिश्रम करता है कि शिक्षण कार्य इतना सुलभ नहीं है जिसे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी सफलता पूर्वक कर सकते हैं । योग्यतम तथा प्रभावशाली शिक्षक बनाने में आधुनिक पर्यवेक्षण सहायक होता है।

8.''शिक्षण सेवा'' पर आधारित- आधुनिक पर्यवेक्षण का मुख्य उद्देश्य शिक्षकों का केवल मूल्यांकन करना नहीं अपितु शिक्षकों की सेवा करना हैं इस पर्यवेक्षण में सेवा भावना तथा भ्रातृ भावना पर अधिक ध्यान दिया जाता हैं। इस प्रकार आधुनिक पर्यवेक्षण को शिक्षण-सेवा के लिये महत्वपूर्ण समझा जाता है।

9. अधिकाधिक एकीकृत तथा समन्वयकारी- आधुनिक पर्यवेक्षण अकेला होकर कार्य करने की प्रणाली में विश्वास नहीं हे। शैक्षिक उन्नति के लिये सभी वयक्तियों तथा सभी स्थानों से सहायता प्राप्त करने, कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करने तथा उपयोगी व्यक्तियों को एक साथ जोड़ने के लिये आधुनिक पर्यवेक्षण अद्भुत प्रयास करता है। एक विद्यालय की गतिविधियों से दूसरे विद्यालय का सम्बन्ध जोड़ने तथा सामूहिक रूप में कार्यक्रमों का आयोजन करने का भी प्रयास किया जाता है। शिक्षक एवं छात्र एक दूसरे के गुणों से प्रभावित होकर अपना शैक्षिक स्तर ऊँचा उठा सकें इसके लिये आधुनिक पर्यवेक्षण अधिक जागरूक तथा प्रयत्नशील रहता है।

10. समस्या समाधान हेतु अधिक जागरूक- आधुनिक पर्यवेक्षण से समस्या समाधान के प्रति सुप्त कदापि नहीं होता। ''शिक्षण-प्रक्रिया, शिक्षा सुविधा, छात्र विकास'' के मार्ग में उपस्थित कठिनाइयों का शीघ्र निवारण करने के लिये आधुनिक पर्यवेक्षण सदैव तत्पर रहता है। समस्या समाधान के लिये सभी सम्बन्धित व्यक्तियों का परामर्श लेकर आधुनिक पर्यवेक्षण में जनतात्रिक प्रणाली से कार्य किया जाता है। पर्यवेक्षण जानबूझकर भी कुछ प्रमुख समस्याओं को शिक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। जिससे उनकी रचनात्मक योग्यताओं का अधिकाधिक लाभ उठाया जा सकता है। सारांश यह है कि समस्त शैक्षिक कार्यक्रमों में उत्तम दशा उत्पन्न करने के प्रमुख उत्तदायित्व का आधुनिक-पर्यवेक्षण द्वारा कुशलता पूर्वक निर्वाह किया जाता है।

शैक्षिक पर्यवेक्षण का लक्ष्य कार्य संचालन और उसका सुधार करना ही नहीं होता है अपितु समस्यायें कार्य संचालन में ही उत्पन्न होती हैं इसलिए पर्यवेक्षण से समस्याओं की पहचान करके समाधान भी किया जाता है।

वस्तुतः परम्परागत तथा आधुनिक पर्यवेक्षण में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह भी हे कि परम्परागत पर्यवेक्षण का व्यक्तित्व ही प्रधान होता है। अन्य कर्मचारी उसी के आदेशों की प्रतीक्षा करते हैं परन्तु आधुनिक पर्यवेक्षण में शिक्षक प्रत्येक कार्य को करने के लिये आगे आते हैं तथा पर्यवेक्षण का व्यक्तित्व परामर्शदाता के रूप में पीछे होता है।

परम्परागत तथा आधुनिक पर्यवेक्षण के सम्बन्ध में पूर्व पृष्ठों में पर्याप्त उल्लेख किया जा चुका है। जिसके आधार पर दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध को और भी अधिक स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है।

1.6 शिक्षा पर्यवेक्षण का महत्व

स्वतन्त्र भारतवर्ष में विद्यालय शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। विद्यालय के कक्षा-भवनों मे कल के नागरिकों का निर्माण किया जाता है। देश की सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी आदि परिस्थितियों का प्रभाव विद्यालय की शिक्षा पर ही होता है। विद्यालयों के पाठ्यक्रम में आज विधि विषयों को अपनाया जाता है। इनके असीमित एवं अतुलित भण्डार को विद्यालयों में अपनाने का अधिकाधिक प्रयास किया जाता है। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की शिक्षा में आज जितनी विविधता, व्यापकता तथा परिणात्मकता है वह पहले कभी नहीं थी। अनेक प्राविधिक, कृषि सम्बन्धी, व्यावसायिक आदि क्षेत्रों से सम्बन्धित संस्थाओं को स्थापित किया गया हे। वास्तव में शिक्षण संस्थाओं तथा शिक्षर्थियों की संख्या में वृद्धि करने से कोई विशेष लाभ तब तक नहीं होता जब तक उसका उचित रूप में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण न किया जाता हो। विज्ञान एवं तकनीकी के कारण आज शिक्षण सामग्री तथा शिक्षक उपकरणों के क्षेत्र में अधिकाधिक विकास हुआ है। अतएव इनका समुचित लाभ उठाने के लिये शैक्षिक पर्यवेक्षण के महत्व को स्वीकार किया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण विधियों, शिक्षक की समस्याओं, उचित पाठ्यक्रम निर्धारण, पाठ्येतर क्रिया-कलापों को विद्यालयों में किस प्रकार सुनियोजित किया जाये और शिक्षा स्तर को गुणात्मकता की ओर किसी प्रकार अग्रसर किया जाय, वास्तव में इसके लिये शैक्षिक पर्यवेक्षण अधिक मूल्यवान एवं लाभकारी है। अन्य व्यय करके उत्तम शिक्षा ग्रहण करने तथा मानवीय साधनों की अधिकतम उपलब्धि करने में शैक्षिक पर्यवेक्षण की विधियां महत्वपूर्ण समझी जाती है। इसके अतिरिक्त भौतिक साधनों को उचित रूप में जुटाने के कार्य में शैक्षिक प्रशासन सहायक होता है। विद्यालय समुदायिक स्रोतों को अपनाकर किस प्रकार उन्नति करें तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यालयों की शिक्षा में किसा प्रकार का परिवर्तन किया जाय, इसके लिये दिशा निर्देश शैक्षिक प्रशासन ही कर सकता है। शैक्षिक योजनाओं का निर्माण करने, विद्यालयों के समस्त कार्यक्रमों का उचित मूल्यांकन करने तथा शिक्षा कार्य को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने में शैक्षिक पर्यवेक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

1.6.1 शिक्षा पर्यवेक्षण की प्रकृति

शिक्षा पर्यवेक्षण शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे शिक्षा की उत्तम व्यवस्था की जाती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रकृति अत्यन्त गत्यात्मक होती है। जो शैक्षिक स्तर को ऊँचा करने में सदैव सहायक होती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रकृति की कुछ विशेषताओं का निम्नलिखित पंक्तियों में उल्लेख किया जा सकता है।

1.शिक्षा पर्यवेक्षण शिक्षण प्रक्रिया की उन्नति में सहायक होता है - शैक्षिक पर्यवेक्षण वास्तव में शिक्षण कार्य की दशाओं में सदैव उन्नति प्रदान करता है। शिक्षण यदि उत्तम ढंग से होता है तो सीखने की स्थिति में भी सुधार हो जाता है। अतएव शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्तर्गत जितनी नवीन विधियां अपनाई जाती हैं, उनका उद्देश्य शिक्षण प्रक्रिया को उन्नत करना ही होता है।

2.व्यवसायिक नेतृत्व हेतु प्रोत्साहनकारी - शैक्षिक पर्यवेक्षण के अन्तर्गत शिक्षकों को शिक्षण कार्य सिखाने का प्रयास किया जाता है। शैक्षिक पर्यवेक्षकों की सहानुभूति शिक्षकों को शिक्षण कार्य सिखाने के प्रयास में रूचि लेने के लिये प्रोत्साहन देती हैं। शिक्षकों को व्यक्तित्व का विकास करने के पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाते हैं, इस प्रकार शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षकों को व्यावसायिक नेतृत्व की योग्यता प्रदान करने में सहायक होता है।

3. शैक्षिक पर्यवेक्षण एक शैक्षिक सेवा - शिक्षा पर्यवेक्षण शैक्षिक सेवा के रूप में कार्य करता है। आधुनिक पर्यवेक्षण की भावना प्रशासन की नहीं अपितु सेवा की होती है। इस सम्बन्ध में ''जेनेवा में हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का मत उल्लेखनीय है।

> "Inspection should be cosidered as a service to interpret to teachers and the public the educational polices of the authorities and modern educational ideas and methods and also to interpret to the competent authorities the experience, needs and aspirations of teachers and local communities."

4. शैक्षिक पर्यवेक्षण में सहयोग की भावना - शैक्षिक पर्यवेक्षण की प्रवृत्ति में संयोगात्मक भावना की प्रमुखता होती है। शिक्षकों के विकास के लिये शैक्षिक पर्यवेक्षण की नीति समन्यवयकारी तथा सहयोगात्मक होती है। शिक्षकों को इस प्रकार प्रोत्साहित किया जाता है कि वे व्यक्तिगत तथा सामुहिक रूप में अपने कार्या का सम्पादन प्रभावशाली ढंग से करते हैं।

1.6.2 शिक्षा पर्यवेक्षण : शैक्षिक नेतृत्व

कार्य की उचित गति ही उद्देशें की पूर्ति में सहायक होती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण के कार्य भी ही होते हैं जो शैक्षिक उन्नति के लिये सहायक होते हैं। अतएव कार्यों के अभाव में अथवा कार्यों की गति रूक जाने से छोटा या बड़ा किसी प्रकार का संगठन या प्रशासन असफल ही हो जाता है।

1. नेतृत्व प्रदान करना - शिक्षा पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य नेतृत्व का प्रशिक्षण समझा जाता है। जनतन्त्रात्मक देश में तो नेतृत्व की नितान्त आवश्यकता होती है। कोई भी पर्यवेक्षण सम्पूर्ण उत्तरदायित्व का वहन स्वयं अकेला होकर नहीं करता। वह अपनी सहायतार्थ अन्य सहनेताओं का भी चयन करता है जिससे उसके कार्य में सुविधा होती है तथा अन्य व्यक्तियों को भी नेतृत्व करने के अवसर मिलते हैं। वर्तमान युग में प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों का सर्वत्र व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रजातान्त्रिक पद्धित का विश्वास समान अवसरों को प्रदान करने तथा सभी व्यक्तियें को सम्मानित समझने में होता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य भी अपने समूह के सभी व्यक्तियों को आदर करना तथा इस प्रकार उन्हें प्रोत्साहन देना है जिससे वे कार्यें में पूरा सहयोग प्रदान करें। इस भावना के अन्तर्गत पर्यवेक्षण केवल परामर्शदाता तथा संकलनकर्ता के रूप में होता है अन्य सभी व्यक्ति स्वयं को नेता मानकर समय तथा परिस्थिति के अनुसार उत्तम कार्य करने के लिये अभ्यस्त हो

जाते हैं। जिस समूह के कार्य केवल एक ही नेता (पर्यवेक्षक) की प्रतीक्षा में अधूरे पड़े न रहकर अन्य व्यक्तियों के सहयोग से सम्पन्न होते हैं, वह समूह नेतृत्व-शक्ति का उत्तम प्रशिक्षण देने वाला समझा जाता है।

शैक्षिक कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये विभिन्न मतों को प्रकट करने वाले तथा विभिन्न स्वभावों के व्यक्तियों को एक साँचे में ढालने का कार्य महत्वपूर्ण समक्षा जाता हैं।

वास्तव में ''नेतृत्व'' के अभाव में व्यक्तियों की अन्तःनिर्हित क्षमताओं का विकास सम्भव नहीं होता। ''कैम्पबैल तथा ग्रेग'' ने अपनी पुस्तक में ''नेतृत्व'' को ऐसी सम्पूर्ण प्रक्रिया माना है जिसके द्वारा मानवीय तथा भौतिक स्रोतों को उपलबध किया जा सकता है तथा उन स्रोतों को किसी भी कार्य के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रभावकारी बनाया जा सकता है।

निःसन्देह कहा जा सकता है कि सामुहिक भावना तथा प्रयास को बढ़ावा देने के लिए शैक्षिक पर्यवेक्षण का ''नेतृत्व प्रदान'' करने का कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसी भावना के फलस्वरूप एक समूह के व्यक्ति आपस में घनिष्ठ बनते हैं तथा अपनी योग्यताओं का ठीक प्रकार परिचय देते हैं ।

2.नीतियों का निर्धारण करना - शिक्षा के क्षेत्र में उचित नीतियों का निर्धारण करना शैक्षिक पर्यवेक्षण का महत्वपूर्ण कार्य है। नीति-निर्धारण में यद्यपि जनता में मत को प्रमुख श्रेय दिया जाना चाहिए, परन्तु भारतवर्ष जैसे विकासशील देश में जहाँ की जनता को अभी जनतात्रिक पद्धति के लिये अभ्यस्त कराया जा रहा हो, शैक्षिक नीति निधारण का कार्य नहीं सौंपा जा सकता। इसीलिये शैक्षिक पर्यवेक्षण का यह कार्य और भी अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण है। शिक्षा वास्तव में एक उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है। व्यक्तियों की शक्तियों तथा योग्यताओं को उचित विकास तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल ही शिक्षा-प्रणाली की व्यवस्था करना शिक्षा का महान उद्देश्य हुआ करता है। शिक्षा के उद्देश्यों तथा लक्ष्यों का निर्माण करने तथा शिक्षा की योजना में सामाजिक आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है। समाज के व्यक्तियों द्वारा अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जाती है राज्य सरकारें भी शिक्षा पर अतुलित धनराशि व्यय करती है तथा शिक्षण संस्थाओं में अध्यापक एवं प्रशासक शैक्षिक उन्नति के लिये पूर्ण प्रयास करते हैं, परन्तु इन सभी व्यक्तियों का प्रयास निष्फल तथा प्रभावहीन हो जायेगा, यदि शिक्षा के क्षेत्र में उचित एवं लाभकारी नीतियों को निर्धारित नहीं किया जाता। पर्यवेक्षण का ''नीति निर्धारण'' करने का कार्य इतना सुनिश्चित होना चाहिए जो किसी भी संस्था अथवा संगठन के लिये उचित निर्देशन दे सके। उचित निर्माण करने के अभाव में न तो सदृढ़ योजना को बनाया जा सकता है और न ही कार्यों का संचालन ठीक प्रकार से हो पाता है। योजना निर्माण कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन का उत्तरदायित्व वस्तुतः शैक्षिक पर्यवेक्षण का ही होता है। अतः उपयोगी नीतियों को निर्धारित करने के उपरान्त ही शैक्षिक पर्यवेक्षण को अन्य कार्यों में सफलता मिल सकती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए कि वह सामुदायिक आवश्यकताओं पर ध्यान रखते हुए ही नीतियों का निर्धारण करे। वस्तुत नीति तथा योजना का सामुदायिक आवश्यकताओं से अविच्छित सम्बन्ध होता है। जैसे ''बार, बर्टन तथा बुकनर'' ने लिखा है।

"Policy and plan are thus kept closer to the needs of the total community"

नीति निर्धारण के लिये देश की जनता को जागरूक बनाने की परमावश्यकता है। शिक्षा के नवीन पहलुओं तथा नवीन आयामों पर जनता द्वारा किया गया गहन चिन्तन शिक्षा विशारदों, शिक्षा मन्त्रियों तथा शैक्षिक पर्यवेक्षकों को उत्साहित अवश्य करेगा। जिस जनता के लिये शैक्षिक नीतियों को निर्धारित किया जाता हैं वह यदि शैक्षिक प्रक्रिया के महत्वपूर्ण कार्यों में भाग न ले तो यह हास्यास्पद एवं दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण के ''नीति निर्धारण'' कार्य के अन्तर्गत जनता को शिक्षा के प्रति चिन्तनशील बनाना भी प्रमुख कार्य समझा जाता है।

3.व्यक्तियों की कार्य क्षमता में वृद्धि - शैक्षिक पर्यवेक्षण की सम्पूर्ण गतिविधि शिक्षकों के शिक्षण कार्य को उन्नत बनाती है। शिक्षण संस्थाओं में यद्यपि शिक्षकों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी कार्य में लगे रहते हैं तथापि शैक्षिक पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य शिक्षकों को परामर्श देना, शिक्षण अवस्थाओं में सुधार करना तथा शिक्षण सामग्री को उन्नत बनाना ही समझा जाता है। आधुनिक पर्यवेक्षण के अनुसार शैक्षिक पर्यवेक्षक का मुख्य उत्तरदायित्व शिक्षकों की योग्यताओं का विकास करना माना जाता है। शिक्षक के लिये उनकी अधिकाधिक उपयोगिता क्या और किस प्रकार सम्भव हो सकती है? इसका सही निर्देशन शैक्षिक पर्यवेक्षण ही दे सकता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण अध्यापकों को इस प्रकार की नेतृत्व शक्ति प्रदान करता है जिससे वे व्यावसायिक कुशलता को प्राप्त करते हैं और शिक्षण संस्थाओं की दशाओं में सुधार करते हैं। फिर भी अध्यापकों में यह व्यावसायिक कुशलता तथा शिक्षण योग्यता तब तक अंकुरित नहीं होती जब तक उसमें आत्म बोध की भावना और जिज्ञासा उत्पन्न न हो। वास्तविक आवश्यकता तथा जिज्ञासा के कारण व्यक्ति कुछ करने या सीखने के लिये विवश होता है। शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षकों में जिज्ञासा को अंकुरित करने का महत्वपूर्ण कार्य करता इस प्रकार उत्तम शिक्षा पर्यवेक्षण वही होता है जिसमें अध्यापक अधिकाधिक कार्य करते हैं अथवा जिसमें शिक्षक आलसी एवं सुस्त न होकर अधिक जागरूक रहते हैं। इस प्रकार शिक्षकों को शिक्षण कार्य के प्रति अधिकाधिक जागरूक बनाना शैक्षिक पर्यवेक्षण का कार्य ही समझा जाता है।

शिक्षकों की व्यावसायिक उन्नति में शैक्षिक पर्यवेक्षण कई प्रकार से सहायक हो सकता है। तथा सेवाकाली प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षकों की सहायता की जा सकती है, अनुभवी शिक्षकों के शिक्षण अनुभवों का लाभ उठाते हुये कोई रचनात्मक कार्य अवश्य किया जा कसता है। इसके अतिरिक्त यदि शिक्षकों तथा शैक्षिक पर्यवेक्षकों के बीच सद्भावना होती है तथा शिक्षकों को कार्य करने की स्वतंन्त्रता रहती है तो उत्तम शिक्षण प्राप्त करने का उद्देश्य सरलता पूर्वक प्राप्त हो जाता है शैक्षिक पर्यवेक्षण के क्षेत्र में पर्यवेक्षक तथा शिक्षक दोनों ही एक दूसरे से सीखने का प्रयास करते हैं। पर्यवेक्षण के अन्तर्गत सर्जनात्मक तथा प्रभावशाली शिक्षण कार्यों को अपनाना ही शिक्षकों को सही दिशा प्रदान करना है। पर्यवेक्षण को शिक्षकों के साथ छात्रों के व्यवहार का अध्ययन करना होता है, छात्रों की आवश्यकताओं को समझना पड़ता है। पर्यवेक्षण गम्भीर अध्ययन होता है, छात्रों की आवश्यकताओं को समझना पड़ता है। पर्यवेक्षण गम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त ही किसी निष्कर्ष

पर पहुंचते हैं सारांश में यह कहा जा सकता है कि सहयोग, सद्भावना, समायोजन तथा स्वतन्त्रता की भावना को अपनाकर ही शैक्षिक पर्यवेक्षक शिक्षकों की व्यवसायिक उन्नति के कार्य में सफल हो सकता है।

4.मानवीय सम्बन्धो में सुधार - किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास उस पर्यावरण पर अधिक आश्रित होता है जहाँ उसे जीवन व्यतीत करना होता है। परिवार के 'प्रेम' सहानुभूति, उदारता परोपकार आदि मानवीय गुणो को जिस व्यक्ति ने समीपता से देखा है वे गुण उस व्यक्ति में स्वयमेव आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त परिवार एवं समाज में व्याप्त परिस्थितियाँ व्यक्ति को निराशा, उदास एवं शिथिल बनाती हैं। जिससे व्यक्ति समाज के प्रति कुण्ठाग्रस्त हो जाता है किसी संस्था या समाज में रहकर व्यक्ति प्रेम, सम्मान तथा सहानुभूति की भावना को प्राप्त करता है तो उसके व्यक्तित्व में सुरक्षा और आत्मविश्वास जागृत हो जाता है। समूह के प्रत्येक व्यक्तित्व में सुरक्षा और आत्मविश्वास जागृत हो जाता है। समूह के प्रत्येक व्यक्ति का सही उपचार किया जा सकता है तथा समूह के सभी कार्यों को उन्नत किया जा सकता है।

शिक्षा पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य शैक्षिक क्षेत्र में लगे हुये सभी व्यक्तियों के प्रति उत्तम मानवीय सम्बन्ध की भावना को प्रदर्शित करना है।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि एक समूह के अन्तर्गत कुछ व्यक्तियों को एकत्रित करना मात्र ही मानवीय सम्बन्धों की स्थापना नहीं कहा जा सकता। इस विषय में ''किमबाल विल्स'' ने कहा है -

''प्रार्थना करने से ही उत्तम मानवीय सम्बन्धों का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता, जब व्यक्ति साथ रहते हैं तथा अपने सहयोगियों के साथ कार्य करते हैं तो उनमें अनुकरण करने में स्वयं ही उत्तम मानवीय गुण विकसित हो जाते हैं।''

शिक्षा पर्यवेक्षण को मानवीय सम्बन्धों की स्थापना करने के लिये अथक प्रयास करना पड़ता है। इसके लिये पर्यवेक्षण को कुछ बातों की ओर अवश्य ही ध्यान आकर्षित करना चाहिये। इन बातों का संक्षेप में इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है-

क) शिक्षा पर्यवेक्षक के मस्तिष्क में स्वयं को बड़ा समझने की भावना नहीं रहनी चाहिये। उसे अपने समस्त सहयोगियों को समान स्तर वाला ही समझना चाहिये। पर्यवेक्षक द्वारा किसी भी कार्य में शासन कार्य में सेवा भावना को ही प्रमुख समझें। पर्यवेक्षक की यह भावना उसके सहयोगियों में सुरक्षा तथा आत्म विश्वास की भावना को उत्पन्न करेगी।

ख) शिक्षा पर्यवेक्षक को अपने सहयोगियों की योग्यता एवं ईमानदारी के प्रति पूर्ण आस्था एवं विश्वास होना चाहिये। पर्यवेक्षक को यह पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि समूह की क्रियाओं को करने के लिये समूह का प्रत्येक व्यक्ति योग्यता रखता है अतएव पर्यवेक्षक द्वारा समूह के सभी व्यक्तियों को कार्य करने के लिये समान अवसर प्रदान किये जाने चाहियें जिससे सभी व्यक्ति उत्साह पूर्वक कार्यों में भाग ले सकें तथा समस्याओं का निराकरण करने में भागीदार बन सकें।

ग) योग्य शिक्षा पर्यवेक्षक को कार्य की सफलता का श्रेय स्वयं न लेकर समूह के व्यक्तियों को ही देना चाहिये। अपनी त्रुटियों को स्वीकार करने में भी पर्यवेक्षक को संकोच नहीं करना चाहिये। अन्य सहयोगियों की त्रुटियों के कारण यदि कार्य में विध्न पड़े अथवा असफलता मिले तो इसके लिये सहयोगियों को दोषी कभी नहीं ठहराना चाहिये। वास्तव में किसी भी कार्य की योजना तथा कार्यान्वयन आदि के लिये शैक्षिक पर्यवेक्षक ही

पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है। इस उत्तरदायित्व का वहन पर्यवेक्षक को प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिये। शैक्षिक पर्यवेक्षक का गुण अत्यन्त आकर्षक, असाधारण एवं महत्वपूर्ण होता है।

घ) शिक्षा पर्यवेक्षण द्वारा ऐसे उत्साह जनक तथा प्रेरणायुक्त वातावरण की रचना की जानी चाहिये जिसमे पर्यवेक्षक के साथ अन्य सहयोगी विचारों का खुलकर आदान-प्रदान कर सकें, जिसमें सहयोगियों की सहयोगात्मक भावना का पूरा लाभ उठाया जा सकें, इसके अतिरिक्त यदि नवीन प्रयोगों में शैक्षिक पर्यवेक्षक तथा शिक्षक एकजुट होकर कार्य करते हैं तो सम्बन्धों में पर्याप्त सुधार होता है।

ड) शिक्षा पर्यवेक्षक का शिक्षकों के प्रति व्यवहार अत्यन्त मधूर तथा मानवीय होना चाहिये क्योंकि पर्यवेक्षक शिक्षकों का शिक्षक या सहायक नहीं होता है, अपितु उनमें से एक व्यक्ति ही होता है। एक समूह में एक साथ रहते हुये तथा सहयोगियों पर सद्भावनापूर्ण विश्वास रखकर ही मानवीय सम्बन्धों की वृद्धि की जा सकती है। वास्तव में यह कार्य किसी भी संस्था का प्राण होता है। संस्था की उन्नति, सफलता तथा प्रसिद्ध मानवीय सम्बन्धों की मधुरता में ही व्याप्त होती है।

5.शिक्षा-अधिगम व्यवस्था का अध्ययन - शिक्षा पर्यवेक्षण का क्षेत्र आधुनिक युग में अत्यन्त उत्तम है। पूर्व समय में कक्षाओं का निरीक्षण, शिक्षकों का छिद्रान्वेषण, आर्थिक अनुदानों की आय-व्यय का निरीक्षण, शिक्षा के सम्बन्ध में सामान्य निर्देशन देना ही पर्यवेक्षण का कार्य समझा जाता था, परन्तु आधुनिक पर्यवेक्षण की दृष्टि ''छात्र, शिक्षक, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, शिक्षण सामग्री, मूल्यांकन, पाठ्य सहगामी तथा पाठ्येतर क्रियाओं की ओर रहती है। सीखने वाले छात्र तथा सिखाने वाले शिक्षक को विभिन्न अवस्थाओं में सुधार करने का उत्तरदायित्व भी पर्यवेक्षक का ही होता है। सारांश में कहा जा सकता हे कि शिक्षा की सम्पूर्ण क्रिया में वाछंनीय परिवर्तन करना शैक्षिक पर्यवेक्षण का मुख्य कार्य है। शैक्षिक पर्यवेक्षण का मुख्य उद्देश्य सीखने की परिस्थतियों में आवश्यक सुधार करना है। इसके लिये पर्यवेक्षक को अधिकाधिक गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। पर्यवेक्षक का इस सम्बन्ध में दृष्टिकोण तथा सर्वेक्षण अत्यन्त व्यापक होना चाहिए। उसे संस्था या विभाग के समस्त छात्रों तथा शिक्षकों की संख्या का ठीक ज्ञान होना चाहिए। छात्र इस समय किस प्रकार के पाठ्यक्रम का अध्ययन कर रहे हैं तथा कक्षा भवनों में शिक्षक किस प्रकार शिक्षण सामग्री का प्रयोग कर रहे हैं, इस सम्बन्ध में शैक्षिक पर्यवेक्षक को स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त नवीनतम आयामों, नवीन शिक्षण विधियों, नई तकनीकी तथा नवीन अनुसन्धानों के विषय में भी पर्यवेक्षक को सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। शैक्षिक पर्यवेक्षक का उत्तरदायित्व केवल शैक्षिक कार्यक्रमों का निरीक्षण करना ही नहीं है, जिस सामाजिक वातावरण में संस्था स्थापित है, उसके प्रति भी पर्यवेक्षक को समन्वयात्मक दृष्टि रखनी पड़ती है। शिक्षण संस्था को समुदाय के निकट किस प्रकार रखा जा सकता है, इसका पर्यवेक्षक को विशिष्ट अध्ययन करना परमावश्यक है। शिक्षा के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक पर्यवेक्षक कितना सही कार्य कर रहा है इसका भी पर्यवेक्षक को अध्ययन करना चाहिए। इतना स्वीकार करने योग्य है कि शैक्षिक पर्यवेक्षक जितना अध्यनशील, समस्याओं के प्रति सजग तथा नवीन ज्ञान के प्रति जिज्ञासू होता है, शैक्षिक पर्यवेक्षण उसी अनुपात में प्रभावशाली होता है।

6.शिक्षण अधिगम व्यवस्थाओं में सुधार - शिक्षण-अधिगम की समस्त अवस्थाओं का अध्ययन करने के उपरान्त शैक्षिक पर्यवेक्षक इस दिशा में आवश्यक सुधार करने योग्य बनता है। अपने सभी सहयोगियों का

सहयोग प्राप्त करके शैक्षिक पर्यवेक्षक, शिक्षण-अधिगम की अवस्थाओं में पर्याप्त सुधार कर सकता है। वर्तमान युग में शिक्षण तथा अधिगम के तीन स्तरों को निरन्तर दृष्टि में रखा जाता है। ये स्तर है - (1) स्मृति स्तर (2) बोध स्तर तथा (3) चिन्तन स्तर। आज केवल छात्रों को कुछ सामग्री कण्ठस्थ कराना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उनकी बुद्धि में इस प्रकार वृद्धि करना आवश्यक समझा जाता है जिससे वे अधिक चिन्तशील तथा सर्जनात्मक बनाने के लिये परम्परागत पाठ्यक्रम पर ही आश्रित नहीं रहा जा सकता। इसके लिये पाठ्यक्रम के नवीन सिद्धान्तों की ओर ध्यान आकर्षित करना पड़ता है। पाठ्यक्रम बाल केन्द्रित तथा अनुभव केन्द्रित होना चाहिए जिससे बालकों की निरन्तर उन्नति हो सके। वास्तव में जो बातें छात्रों के पूर्व अनुभवों में व्याप्त हैं, उन्ही के आधार पर नवीन ज्ञान देना श्रेयस्कर होता है। पाठ्यक्रम में भी इसी बात का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए। ''बार, बर्टन तथा ब्रूकनर'' का भी यही मत है-

> "Effective guidance of the learning activity depends upon knowledge by the teachers of the characteristic and background of each pupil. – Barr, Burton & Bruknar "

7.शैक्षिक उत्पादन में वृद्धि - किसी भी देश के महान उद्देश्यों की प्राप्ति शिक्षा के माध्यम से ही की जाती है। शिक्षा के उद्देश्य राष्ट्र के उद्देश्यों से पृथक नही समझे जाते। उदाहरण के लिये कोई भी राष्ट्र अपने नागरिकों की स्वांगीण उन्नति में विश्वास रखता है, शिक्षा का उद्देश्य भी छात्रों की शक्तियों तथा योग्यताओं को विकसित करना समझा जाता है। शिक्षा ही भावी नागरिकों को इस योग्य बनाती है जिससे वे समाज के कार्यों में कुशलता पूर्वक भाग ले सकें। शैक्षिक पर्यवेक्षण के सभी उद्देश्यों में यही बात मूल रूप से निहित होती है। शैक्षिक पर्यवेक्षण शिक्षण-प्रक्रिया का निरन्तर मूल्यांकन करता रहता है। पर्यवेक्षक को निम्नलिखित बातों की ओर सदैव जागरूक रहना पड़ता है-

क) क्या विद्यालयी में दी जाने वाली शिक्षा राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक है?

ख) क्या शिक्षा की प्रक्रिया शिक्षा को पूंजी मानने के लक्ष्य में सहायता कर रही है?

ग) क्या विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा उत्पादन कार्यों में सहायक सिद्ध हो सकती है?

घ) शिक्षक का प्रभावशाली शिक्षण छात्रों के ज्ञार्नाजन में कहा तक सहायक है?

ड) शैक्षिक प्रक्रिया में नवीन आयाम किसी सीमा तक शिक्षा की गुणात्मकता वृद्धि में सहायक है।

वास्तव में यह सभी ऐसे कार्य हैं जो शैक्षिक उत्पादन प्रक्रिया में सहायक हैं। शिक्षा का उत्पादन वास्तव में देश के नवयुवकों की योग्यता से सम्बन्धित होता है। शिक्षक के द्वारा यदि किसी देश में कुशल, डाक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक, तकनीकी विशेषज्ञ, कलाकार शिक्षक तथा कुशल नेताओं का निर्माण किया जाता है तो वह शिक्षा का श्रेष्ठ उत्पादन ही कहा जाता है, परन्तु इन सभी योग्य व्यक्तियों का निर्माण कक्षा-भवनों में ही किया जाता है। उत्तम व्यक्ति होने के बीज शैक्षिक संस्थाओं में ही अंकुरित किये जाते हैं। प्रारम्भ में ही हमें यह देखना होता है कि हम अपने छात्रों को किस प्रकार की और किस ढंग से शिक्षा दे रहे हैं। आज के युग में होनहार व्यक्तियों की योग्यताओं को प्राथमिकता दी जाती हैं यह स्वीकार किया जाता है कि भौतिक साधनों की अपेक्षा मानव अधिक महत्वपूर्ण है, पाठ्यक्रम निर्माण की अपेक्षा शिक्षक का व्यक्तित्व अधिक प्रभावशाली है तथा शिक्षण की अपेक्षा अधिगम अधिक आवश्यक है।

1.7 सारांश

सभी प्रकार की कुशलताओं के मूल में मानवीय योग्यता ही प्रधान है। छात्रों के नैतिक आध्यत्मिक शैक्षिक तथा नेतृत्व-शक्ति के विकास में प्रभावशाली शिक्षक का योगदान सर्वाधिक होता है। अतएव यदि शिक्षा प्रक्रिया की उत्पादकता में वृद्धि करनी है तो शिक्षक के व्यक्तित्व को तथा उसके आस-पास के वातावरण को शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों के अनुकूल बनाना होगा।

शिक्षा के विस्तृत कार्यभार को अकेला शैक्षिक पर्यवेक्षक ही नहीं संभाल सकता। शिक्षा को उत्पादन कार्यों में किस प्रकार उपयोगी बनाया जाय, इसके लिये शिक्षण-संस्था के सभी सहयोगियों से विचार-विमर्श करने के उपरान्त शैक्षिक पर्यवेक्षक को कोई निर्णय लेना चाहिए। शैक्षिक पर्यवेक्षक को निरन्तर सावधान रहना चाहिए कि विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक बनी रहे यदि शिक्षित नवयुवक धनोपार्जन करने के लिये योग्य नहीं बन रहे हैं, यदि शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया विद्यालय की शैक्षिक उन्नति के स्तर में वृद्धि नहीं कर रही है तो शैक्षिक पर्यवेक्षक को मूल्यांकन-प्रक्रिया नैदानिक तथा उपचारी दोनों ही पक्ष विद्यमान होते हैं। उत्तम शिक्षा की व्यवस्था के लिये कुशल शैक्षिक-पर्यवेक्षण को चिकित्सक साधन तत्काल अपनाने चाहिये। जिस समय और जहाँ कहीं भी उत्तम शैक्षिक सामग्री, प्रभावशाली शिक्षक, सुव्यवस्थित पाठ्यक्रम तथा उत्तम शिक्षण विधि की आवश्यकता हो उसका प्रबन्ध शीघ्र किया जाना चाहिये।

1.8 शब्दावली

निर्देशन - ऐसी प्रक्रिया जिसके आधार पर किसी एक अथवा अनेक व्यक्तियों को किसी न किसी प्रकार की सहायता प्रदान की जाती है।

प्रशिक्षण महाविद्यालय - ऐसा स्थान जहाँ किसी विशेष व्यवसाय से सम्बधिंत कौशलों का विकास किया जाता है।

चहुमुखी - बालक के व्यक्तित्व के सभी आयामों का विकास करना।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1 शैक्षिक योग्यता

2 सैडलर-कमीशन

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''पर्यवेक्षण एक विशिष्ट सेवा है।'' इस कथन पर प्रकाश डालिए। (1000 शब्द)

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 माध्यमिक शिक्षा एवं विद्यालय प्रबन्धन (2009), अवधेश किशोर, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

2 शैक्षिक प्रशासन एवं स्वास्थ शिक्षा (2013) सविता सिंह, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।

3 स्कूल प्रबन्धन सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी (2010) जे0पी0 अग्रवाल, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा। ।

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- विद्यालय प्रशासन, संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2009) एव0पी0 सुखिया, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा। ।
- शिक्षा प्रशासन (2010) उमेश चन्द्र कुदेसिया , अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- विद्यालय प्रबन्धन, (2008), आर0ए0शर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
- विद्यालय प्रबन्धन (2008) जे0पी0 वर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठ। ।
- शैक्षिक प्रबन्धन के मूल तत्व (2009) देवदत्त शर्मा, अग्रवाल पब्लिकेशन (181)
- शैक्षिक संगठन, स्वास्थ्य शिक्षा एवं शिक्षण तकनीकी, डी0पी0 मिश्रा, अग्रवाल पब्लिकेशन
- शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन डा0 कर्ण सिंह, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी।

इकाई 2 शिक्षा निरीक्षण का अर्थ तथा कार्य

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 निरीक्षण का अर्थ
    2.3.1 शिक्षा निरीक्षण का उद्गम एवं विकास
    2.3.2 भारत में निरीक्षण का विकास
2.4 विद्यालय निरीक्षण की विशेषताएँ
    2.4.1 निरीक्षण के उद्देश्य
2.5 निरीक्षक के कार्य
2.6 निरीक्षण-पद्धति के दोष
2.7 भारत में विद्यालय निरीक्षण की वर्तमान स्थिति
    2.7.1 निरीक्षण प्रणाली मे सुधार हेतु सुझाव
    2.7.2 भारत में निरीक्षण सुधार का प्रयास
2.8 पर्यवेक्षण की त्रुटियाँ
    2.8.1 पर्यवेक्षण में सुधार के उपाय
2.9 शैक्षिक प्रशासन में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के अभिकरण
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.14 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

ऐतिहासिक सन्दर्भ में विचार किया जाए तो आधुनिक पर्यवेक्षण ही निरीक्षण का परिष्कृत स्वरूप है। प्रारम्भिक दर्शन के अनुरुप निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यालयों में उपस्थित विद्यार्थी, शिक्षक और प्रशासकों का विकास है। इसमें विद्यालय और समाज का विकास भी सम्मिलित है। साधारणतः विद्यालय पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये जाते है। परन्तु दोनों में अन्तर है। इसकी विवेचना इस अध्याय में की गयी हैं।

पर्यवेक्षण का कार्य रचनात्मक अधिक है, यह शिक्षा प्रशासन की सहायक प्रणाली के रूप में कार्य करता है। इसके अन्तर्गत जिला विद्यालय निरीक्षक, विद्यालयों हेतु निरीक्षकों की नियुक्ति करता है। और विद्यालय की निरीक्षण की तिथियाँ निर्धारित करते हैं। विद्यालय निरीक्षण की तैयारी करते हैं। उसके बाद वे रिपोर्ट तैयार करते हैं। रिपोर्ट की प्रतिलिपियाँ जिला विद्यालयों में सफाई, पुताई आदि निरीक्षण के समस्त ही की जाती है। निरीक्षण परिस्थितियाँ औपचारिकता होती है। बढ़ा-चढ़ा कर निरीक्षकों का लक्ष्य व्यवस्था को सुव्यवस्थित करना तथा अनियमिततओं को उजागर करना होता है, परन्तु आज के निरीक्षण कार्य केवल खानापूरी होती है, कोई परिणाम नहीं निकलता है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त

- आप शैक्षिक निरीक्षण का अर्थ बता सकेंगें
- शिक्षा निरीक्षण का उद्गम एवं विकास जान सकेगें।
- भारत में निरीक्षण का विकास जान सकेगें।
- विद्यालय निरीक्षण की विशेषताएँ समझा सकेगें।
- निरीक्षण के उद्देश्य और कार्य से अवगत हो सकेगें।
- निरीक्षण और पर्यवेक्षण पद्धति के दोष जान सकेगें।
- निरीक्षण प्रणाली मे सुधार हेतु सुझाव दे सकेगें।
- शैक्षिक प्रशासन में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के अभिकरण की व्याख्या कर सकेगें।

2.3 निरीक्षण का अर्थ

वैबिस्टर अंग्रेजी शब्द कोश के अनुसार निरीक्षण का अर्थ किसी व्यक्ति की जाँच करना है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार विद्यालय के कार्यो का निरीक्षण विद्यालय-निरीक्षण कहा जा सकता है। डॉ0 मुकर्जी के अनुसार-वरिष्ठ अध्यापक अथवा प्रधानाध्यापक द्वारा किए गए मूल्यांकन को निरीक्षण कहा जाता है।

वास्तक में निरीक्षण एवं निरीक्षक की भूमिका देश, समय और परिस्थिति के अनुसार बदली रही है। निरीक्षण के सम्बन्ध में विभिन्न विद्धानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी है। बर्टन महोदय का विचार है कि ‘‘शिक्षा निरिक्षण का उद्देश्य शिक्षण में उन्नति करना है। बार और बर्टन के अनुसार निरीक्षण एक आधार है। शिक्षण में उन्नति के सभी कार्यक्रम बनाये जाने चाहिए।

उपर्यक्त परिभाषाओं में उत्प्रेरक विकास, शिक्षकों की सहायक प्रक्रिया, शिक्षण सुधार तथा विकास, शिक्षण में सहायता, शिक्षकों की शक्ति को विकसित करना, शिक्षकों की समस्याओं को हल करना, सीखने की स्थितियों का मूल्यांकन आदि के रूप तथा अर्थ में ही शिक्षा निरीक्षण को मान्य किया गया है।

2.3.1 शिक्षा निरीक्षण का उद्गम एवं विकास

शिक्षा निरीक्षण का प्रत्यय अधिक प्राचीन नहीं है सन् 1909 ई0 से पूर्व इसका अस्तित्व ही नहीं था। सर्वप्रथम इंग्लैड के बोस्टन नामक नगर में इस शब्द का प्रयोग किया गया। वहाँ विद्यालयों का निरीक्षण कार्य करने के लिये सन् 1909 ई0 में एक विशेष समिति की स्थापना की गयी जिसमें कुछ चुने हुऐ धर्माधिकारी कुछ धनिक व्यक्ति और कुछ न्यासी सम्मिलित किये गये। इस समिति का कार्य सामान्य रूप से भवन की देखभाल करना, विद्यालय के लिये धन जुटाना तथा शिक्षकों की नियुक्ति पर ध्यान देना था। इस विद्यालय के अधिकांश सदस्य अशिक्षित एवं अप्रशिक्षित होते थे उनमें कार्यक्षमता अधिक नहीं होती थी इसलिये वे निरीक्षण कार्य को भी अपर्याप्त एवं अनियन्त्रित ढंग से करते थे। कुछ समय पश्चात् निरीक्षण की आवश्यकता पर और अधिक बल दिया जाने लगा। सन् (1914) ई0 से निरीक्षकों के क्षेत्र में शिक्षित व्यक्तियों का हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ। सुप्रसिद्ध विद्धान इलियट ने शिक्षण कार्य, शिक्षण कार्य, शिक्षण विधि एवं शिक्षण के उद्देश्यों के सम्बन्ध में अपने सुझाव दिये। सन् (1922) ई0 में बर्टन ने निरीक्षण क महत्वपर अधिकाधिक ध्यान आकृष्ट किया। बर्टन का मत था कि शिक्षण कार्य में सुधार तथा उन्नति के लिये, शिक्षक कार्य में सुधार करने के लिये, विषय एवं पाठ्यवस्तु का चयन करने के लिये, परीक्षण तथा मापन के लिये तथा शिक्षकों की योग्यताओं के आधार पर उनका श्रेणीकरण करने के लिये निरीक्षण का अत्यधिक महत्व है। इस प्रकार निरीक्षण के प्रत्यय का उद्भव इंग्लैंड में हुआ जो आगे चलकर पर्यवेक्षण के स्वरूप में परिवर्तित होता गया।

2.3.2 भारत में निरीक्षण का विकास

भरत में निरीक्षण के इतिहास का आरम्भ बूड के घोषणा पत्र (1954) की संस्तुति के बाद होती है, जिसके अनुसार प्रत्येक राज्य में एक डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक निरीक्षक की नियुक्ति हुई थी। पुनः इन डाइरेक्टरों के लिए शिक्षा की स्थिति का सही चित्र प्रस्तुत करने के लिए योग्य ''इन्सपेक्टर'' की आवश्यकता सुझायी गई। इस इन्सपेक्टर का कार्य सामयिक रूप से स्कूल और कॉलेजो की स्थिति का विवरण सरकार को भेजना होता था। इनका कार्य परीक्षण कराना व उनमें सहयोग देना भी था। अतः प्रारम्भ से इन्सपेक्टर का कार्य एक प्रकार से नियमों को लागू करने तथा त्रुटियों का निर्धारण करने के लिए ही हुआ।

सन् 1858 में स्कूलों को डाइरेक्टर की ओर से अनुदान की शर्ते प्रस्तुत की गई, जिसके अनुसार इन्सपेक्टर को स्कूलों को निरीक्षण एवं अनुदान राशि की मात्रा निश्चित करने का भी अधिकार दिया गया। इस प्रकार इन्सपेक्टर शिक्षा प्रशासन की एक उच्च अधिकृत के रूप में सामने आया।

सन् 1882 में 'हन्टर कमीश्न' की सिफारिश पर इन्सपेक्टर का कार्य शिक्षण की प्रभावशीलता को इस प्रकार देखना था कि जो अनुदान सरकार की ओर से दिया जा रहा है, उसका उपयोग किस सीमा तक समुचित रूप से हो रहा है। बाद में इन्सपेक्टरों को अनुशासन सम्बन्धी अधिकार भी दिए गए।

सन् 1908 में बंगाल के स्कूलों में राष्ट्रीय आन्दोलनों को हतोत्सासित करने के लिए और भी अधिकार दिए गए। सन् (1919) में सेडलर कमीशन निरीक्षण की आलोचना करते हुए लिखा है कि निरीक्षण अधिकांश जल्दबाजी में होता है तथा पाठन विधियों और व्यवस्था के सम्बन्ध में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों से रहित होता है, जोकि स्कूल निरीक्षण के लिए महत्वपूर्ण है।

सन् 1928 में साइमन कमीशन की स्थापना हुई। उसने तत्कालीन विद्यालय निरीक्षण की कमियों की ओर ध्यान दिया। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भी जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो समय इन्सपेक्टर, इन्सपेक्शन पर बिताते हैं, वह कम है, कमियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जो इस प्रकार है -

i. निरीक्षक शाला में प्रभुत्व, सर्वेसर्वा बनकर आते हैं, जो केवल दोष ही ढूँढते हैं तथा आलोचना करते हैं।
ii. अधिकतर निरीक्षक औपचारिकता निभाने के लिए आते हैं। वे न तो शैक्षिक विकास पर न ही स्कूल के विकास पर जोर देते हैं।
iii. निरीक्षक का दृष्टिकोण रचनात्मक न होकर विध्वंसात्मक होता है।
iv. स्कूलों की संख्या के अनुपात में निरीक्षकों की संख्या कम होती है,

अतः वे पूरे स्कूलों को नियमित रूप से नहीं देख सकते।

फोर्ड फाउंडेशन के तत्वावधान में एक अध्ययन दल ने भारतीय माध्यमिक विद्यालयों में प्रयुक्त निरीक्षण प्रक्रिया का अध्ययन किया तथा सुधार हेतु निम्नाकिंत सुझाव प्रस्तुत किए।

i. निरीक्षक को मानवीय सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए अपना कार्य पूरा करना चाहिए और प्रशासक की भावना दूर होनी चाहिए।
ii. इन्सपेक्टर का कार्य बजाय निर्णय के, सुझाव देना है।
iii. इन्सपेक्टरों के लिए विशेष प्रशिक्षण की जरूरत है।
iv. निरीक्षक को कई विधियों का ज्ञान होना चहिए तथा उसको कई भाषाएँ आनी चाहिए।

भारतवर्ष में निरीक्षक का प्रारम्भ पाश्चात्य शिक्षण- प्रणाली का अनुकरण करने के फलस्वरूप ही हुआ। भारतवर्ष में वुड डिस्पैच की संस्तुतियों के फलस्वरूप प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा मण्डलों तथा निरीक्षण-मण्डलों की स्थापना की गयी। पर्यवेक्षण के सन्दर्भ में वुड डिस्पैच की संस्तुति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह संस्तुति इस प्रकार थी-

‘‘हमारी शिक्षा-प्रणाली का भविष्य में अत्यावश्यक अंग निरीक्षण प्रणाली का उचित स्वरूप होगा। हमारी इच्छा है कि सरकार द्वारा चलाये गये विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में निरीक्षकों की पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की जाय जो समय-समय पर इन विद्यालयों की गतिविधियों की आख्या भी प्रस्तुत कर सकेंगे। ये निरीक्षक इन विद्यालयों में परीक्षा सम्बन्धी कार्यों में भी सहायता करेंगे।

इन सुझावों का परिणाम यह हुआ कि शिक्षण कार्य गुणात्मकता को परखने के लिये तथा विद्यालयों को दिये गये अनुदानों का उचित प्रयोग परखने के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति की गयी। निरीक्षकों के अधिकारों में भी

कुछ वृद्धि की गयी। जिसके फलस्वरूप निरीक्षक शिक्षण संस्थाओं में आतंक भी उत्पन्न करने लगे। वास्तव में यह समय भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का था और निरीक्षकों को अधिक शक्ति एवं अधिकारों को देने का आशय तत्कालीन राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलना था। सन् (1919) ई0 में सैडलर कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया था-

''अधिकाशं रूप में निरीक्षण तीव्र गति से किया जाता है, उसमें सौहार्दपूर्ण सुझावों का अभाव है। शिक्षण-पद्धति तथा संगठन सम्बन्धी सुधार की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता जो विद्यालयों के लिये अत्यावश्यक है।''

वास्तव में इन आयोगों तथा समय-समय पर नियुक्त समितियों के प्रतिवेदनों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत में सुयोग्य एवं प्रशिक्षत निरीक्षकों का सर्वथा अभाव है जिसके कारण यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था दूषित तथा प्रभाव शून्य है। इन प्रतिवेदनों का एक प्रभाव यह भी हुआ कि निरीक्षण के स्थान पर पर्यवेक्षण के महत्व को समझा जाने लगा। निरीक्षक के कार्यों में सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को सम्मिलित किया जाने लगा। सन् (1934) ई0 में अंग्रेजी सरकार द्वारा दो परामार्शदाताओं वुड तथा अबोट को भारतवर्ष के विद्यालयों में नीरीक्षण करने के लिये भेजा गया। उनके कथन का साराशं निरीक्षण के कार्य में सुधार रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उनका कथन इस प्रकार था-

आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा प्रतिवेदन में निरीक्षकों के कार्यो को अत्यधिक परम्परागत तथा मशीनवत् बताया गया तथा उसमें पर्याप्त सुधार करने के लिये सुझाव भी दिये गये। इसी क्रम से सन् (1952) ई0 में ए0 एल0 मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग के अध्यक्ष थे। उन्होंने भी अपनी रिपोर्ट में निरीक्षण की तत्कालिन स्थिति को सोचनीय बतलाते हुए इस प्रकार कहा-

''माध्यमिक शिक्षा-आयोग'' की सिफारिशों के आधार पर पर्यवेक्षक के महत्व को और अधिक स्वीकार किया गया। यह धारणा बनी कि शिक्षा-संस्थाओं का उचित निर्देशन पर्यवेक्षक द्वारा ही दिया जा सकता है। पर्यवेक्षकों की गुणात्मकता एवं शक्ति में वृद्धि करने के प्रयास किये गये। निरीक्षक को विद्यालयों के प्रशासनिक कार्यों के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी स्वीकार किया गया। माध्यमिक शिक्षा आयोग की कुछ प्रमुख संस्तुतियाँ थी जिसे भारतीय सरकार द्वारा स्वीकार किया गया। इसके साथ ही पर्यवेक्षण के महत्व पर दृष्टि रखते हुए भारतीय सरकार ने पर्यवेक्षण का गहन अध्ययन करने के लिये इस आयोग को पुनः प्रेरित किया जिसके बारे में विस्तार से आप पहली ईकाई मे जान चूके हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. सर्वप्रथम ..... के बोस्टन नामक नगर में निरीक्षण शब्द का प्रयोग किया गया।

2. किसका मत था कि शिक्षण कार्य में सुधार तथा उन्नति के लिये, शिक्षक कार्य में सुधार करने के लिये, विषय एवं पाठ्यवस्तु का चयन करने के लिये, परीक्षण तथा मापन के लिये तथा शिक्षकों की योग्यताओं के आधार पर उनका श्रेणीकरण करने के लिये निरीक्षण का अत्यधिक महत्व है।
3. किस कमीश्न' की सिफारिश पर इन्सपेक्टरों को अनुशासन सम्बन्धी अधिकार भी दिए गए।

2.4 विद्यालय निरीक्षण की विशेषताएँ

विद्यालय निरीक्षण ब्रिटिश शासन की देन है जिसे हम आज भी प्रयुक्त करते हैं। इसकी प्रमुख विशेषतायें अधोलिखित है।

1. निरीक्षण का उद्देश्य विद्यालय व्यवस्था तथा कार्य संचालन की जाँच करना है और निहित कमियों को उजागार करना है।
2. विद्यालय निरीक्षण औपचारिक तथा समयबद्ध क्रिया है। निरीक्षक जिला अधिकारियों द्वारा नियुक्त किये जाते है।
3. निरीक्षण के परामर्श, सुझाव तथा नेतृत्व को कम महत्व दिया जाता है। आलोचना पर विशेष बल दिया जाता है।
4. निरीक्षण कृत्रिम वातावरण में होता है। विद्यालय की वास्तविक संचालन व्यवस्था की जाँच नहीं होती है।
5. निरीक्षण का कार्यक्षेत्र व्यापक होता है। इसमें विद्यालय की लगभग सभी विद्यालयों की समीक्षा की जाती है।

   (अ) विद्यालय के भवन तथा सफाई व्यवस्था,

   (ब) विद्यालय की शिक्षण क्रियाओं का निरीक्षण,

   (स) विद्यालय में पुस्तकालय तथा वाचनालय की सुविधायें,

   (द) विद्यालय के खेल-कूद सामग्री तथा खेल का मैदान,

   (य) विद्यालय के प्रयोगाशाला तथा शिक्षण सामग्री,

   (ट) शिक्षकगण तथा कर्मचारी वर्ग,

   (ल) वित्तीय व्यवस्था तथा अनुदान का सदुपयोग,

   (श) छात्रों की संख्या तथा विभागों की व्यवस्था आदि,
6. निरीक्षणगण सभी पक्षों पर रिपोर्ट तैयार करते हैं जिसमें वस्तुस्थिति की समीक्षा तथा कमियों व अनियमिताओं का भी उल्लेख करते हैं।

7. निरीक्षण काल में तथा उससे पूर्व प्राचार्य, शिक्षक तथा अन्य कर्मचारी अधिक सजग तथा क्रियाशील रहते हैं। निरीक्षण के कारण विद्यालय में सफाई तथा पुताई हो जाती है।

2.4.1 निरीक्षण के उद्देश्य

विद्यालय निरीक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते हैं-

i. निरीक्षण का प्रयोजन शिक्षकों को अच्छा बनाना है। निरीक्षण के माध्यम से शिक्षकों की कमियों को दूर करते हुए गुणों का विकास करके अच्छे शिक्षक तैयार किए जा सकते हैं।
ii. अध्यापक को मार्गदर्शन देने का कार्य भी निरीक्षक का है। कोई भी मार्गदर्शक तब तक मार्गदर्शन नहीं दे सकता, जब तक वह अपने अधीन व्यक्ति की क्षमताओं को नहीं पहचानता। इन क्षमताओं को निरीक्षण से ही समझा जा सकता है।
iii. निरीक्षण द्वारा उनके सीखने की स्थितियों का मूल्यांकन करना होता है। इसमें यह ज्ञात हो जाता है कि विद्यार्थी किन परिस्थितियों में अधिक सीखते हैं। इस आधार पर पाठन विधियों में भी सुधार किया जा सकता है।
iv. निरीक्षण का कार्य शिक्षकों के विद्यार्थियों की समस्याओं का निदान करने तथा उनकी योग्यता का मूल्यांकन करने में सहायता देना है।
v. निरीक्षण का कार्य शिक्षकों को पाठ्यक्रम निर्माण करने का ज्ञान प्रदान करना तथा पाठ्यक्रम निर्माण के मुख्य उद्देश्य से अवगत कराना है।।
vi. निरीक्षण से शिक्षकों को अधिक अध्ययन की प्रेरणा मिलती है। क्योंकि निरीक्षक निरन्तर शिक्षक के विकास के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह शिक्षक के चहुँमुखी विकास के लिए प्रयत्नशील रहता है अतः शिक्षकों का न केवल व्यावसायिक वरन् एकादिमिक विकास भी निरीक्षण द्वारा होता हैं।

आइए निरीक्षण का अर्थ, ऐतिहासिक स्वरूप तथा उद्देश्य जानने के उपरान्त परम्परागत निरीक्षण तथा आधुनिक परिनिरीक्षणों में अन्तर जाने

i. परम्परागत निरीक्षण विद्यालय में प्रचलित स्थितियों की जाँच तथा विद्यालय-व्यवस्था की कमियों को बताने तक ही सीमित है, उसको दूर करने के लिए उत्तरदायी नहीं है। आधुनिक प्रवृति के अनुसार निरीक्षण सम्पूर्ण विद्यालय-व्यवस्था, उनके संचालन, प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान आदि से सम्बन्धित है।
ii. परम्परागत निरीक्षण अल्पकालिक होता है, जबकि निरीक्षण दिन-प्रतिदिन के कार्यों की देखभाल से सम्बद्ध व्यक्तियों की कुशलता के विकास से सम्बन्धित है तथा इसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए शैक्षिक सुझाव की व्यवस्था रहती है।
iii. प्रचलित निरीक्षण विधि अधिकारिक है, जबकि निरीक्षण लोकतन्त्रीय सहयोगी एवं प्रेम की भावना से पूर्ण होता है। कुछ विद्धानों के अनुसार इसमें सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षक, विद्यालय-प्रबन्धक,

प्रधानाध्यापक, शिक्षक अन्य व्यक्ति एक-दूसरे के सहयोग से विद्यालय के हित के लिए कार्य करते हैं तथा एक-दूसरे के व्यक्तित्व का आदर करते है।

iv. परम्परागत निरीक्षण में सहायता एवं उत्तरदायित्व की भावना का अभाव होता है, जबकि निरीक्षक मुख्यतः इन्हीं दोनों तत्वों पर आधारित है। परम्परागत निरीक्षण में निरीक्षक अपने अधीनस्थों की सहायता देने की अपेक्षा उनकी भूलों की ओर संकेत करता है तथा अपने निर्देशों का पालन करवाता है, प्रस्तावित भावना में परिनिरीक्षक जब-जब उसके परामर्श व प्रेरणा की आवश्यकता होती है, तब-तब वह अपने साथियों को सहर्ष एवं सहानुभूतिपूर्ण ढंग से सहायता देता है। वास्तव में वह स्थिति को सुधारने के लिए स्वयं को भी उत्तरदायी समझता है।

v. परम्परागत निरीक्षण में नेतृत्व का अभाव है। इनमें निरीक्षक अपने अधीनस्थों को किसी कार्य के लिए प्रेरित नहीं करता है, वरन् उन्हें उस कार्य को करने के लिए बाध्य करता है। निरीक्षण सृजनात्मक नेतृत्व पर आधारित है। इसमें निरीक्षक अपने सहयोगियों को कार्य करने के लिए प्रेरणा एवं पथ-प्रदर्शन प्रदान करके अग्रसर करता है।

vi. परम्परागत निरीक्षण में प्रायः एक ही व्यक्ति पर विद्यालय की सुव्यवस्था का दायित्व रहता है, परन्तु निरीक्षण एक सहयोगी प्रक्रिया है जिसमें बहुत-से व्यक्तियों प्रधानाध्यापक, वरिष्ठ शिक्षक, अन्य शिक्षक तथा प्रबन्धक एवं सरकार की ओर से नियुक्त परिनिरीक्षक आदि सभी के प्रयास सम्मिलित हैं।

vii. प्रचलित निरीक्षण औपचारिक व अस्वाभाविक होता है। इसके अतिरिक्त यह लादा हुआ होता है। परिनिरीक्षण अनौपचारिक तथा स्वाभाविक होता है। तथा यह वास्तविक परिस्थितियों से उत्पन्न होता है, अर्थात् आवश्यकतानुसार इसकी माँग उत्पन्न होती है।

viii. निरीक्षण के कार्यों की अपेक्षा पर्यवेक्षक के कार्य अधिक व्यापक, उदार तथा सहायक होते है।

2.5 निरीक्षक के कार्य

विद्यालय निरीक्षक को अनेक कार्य पड़ते है। इन कार्यों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

a. प्रशासनिक कार्य
b. निरीक्षण कार्य
c. सम्पर्क कार्य।

i. **प्रशासनिक कार्य-** जिला स्तर पर शिक्षा विभाग का कार्यालय जिला विद्यालय निरीक्षक के नेतृत्व में कार्य करता है। इस स्थिति में उसे अपने कार्यालय से सम्बन्धित सभी कार्यो का संचालन तथा व्यवस्था करनी पड़ती है। प्रशासनिक अधिकारी के रूप में वह जिलान्तर्गत राजकीय माध्यमिक व प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की व्यवस्था स्थानान्तरण, अवकाश स्वीकृत आदि का कार्य करता है। वेतन, भत्ते तथा अन्य आर्थिक पहलुओं के दायित्व सँभालता है। जिला विद्यालय निरीक्षक ही विभागीय परीक्षओं का अपने जिले में कार्य पूरा करता है। जिला विद्यालय निरीक्षक जिले में शिक्षा की प्रगति के लिए योजनाएँ बनाता है तथा उन्हें क्रियान्वित करने की व्यवस्था करता है।

ii. **निरीक्षण कार्य-** अपने कार्यालय को व्यवस्था, संचालन तथा देखरेख करने के अलावा जिला विद्यालय निरीक्षक को अपने जिले की सीमान्तर्गत स्थित माध्यमिक एवं प्राथमिक विद्यालयों का सामयिक निरीक्षण भी करना पड़ता है। अपने निरीक्षण के अन्तर्गत निरीक्षक विद्यालय को अनेक पहलुओ सें की जाँच करता है। विद्यालय में वह समय-चक्र उपस्थिति, शिक्षण कार्य, सहभागी क्रियाओं का संचालन, परीक्षा कार्य, आय-व्यय आदि अनेक पहलुओं का निरीक्षण करता है।

iii. **सम्पर्क कार्य-** जिला विद्यालय निरीक्षक को अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। सामान्यतः उसे अपने कार्यालय के अधिकारियों, विभाग के उच्च पदाधिकारियों, प्रधानाध्यापकों, शिक्षकों, अन्य विभागों के अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। उसे जन-सम्पर्क की भी आवश्यकता पड़ती है। वह अभिभावकों से सम्पर्क बनाता है। उसे जिलाधीश तथा अन्य विकास अधिकारीयों से सम्बन्ध बनाने पड़ते है।

2.6 निरीक्षण–पद्धति के दोष

ब्रिटिश-कालीन भारत में जिस प्रकार के निरीक्षण की नींव डाली गयी, वह 'परम्परागत' निरीक्षण' या आदेशात्मक निरीक्षण' के नाम से पुकारा जा सकता है, क्योंकि इसमें निरीक्षण की स्थिति निरंकुशतापूर्ण होती है। जब निरीक्षक विद्यालय भवन में प्रवेश करता है तब विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण में विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एच0एस0 लॉरेन्स ने प्रचालित विद्यालय-निरीक्षण-पद्धति का निम्नलिखित शब्दों में बड़ा ही स्पष्ट चित्रण किया है।

''बहुधा विद्यालय-निरीक्षण की असावधनीपूर्वक, अन्यमनस्क एवं असहानुभूतिपूर्ण कहकर आलोचना की जाती है। प्रायः निरीक्षण-दिवस कुछ सीमा तक भयोत्पादक माने जाते हैं। निरीक्षक द्वारा हिसाब-किताब के मामलों पर बल दिया जाता है। इसके द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी मामलों पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। निरीक्षण केवल आँकड़ों परीक्षाफलों के प्रतिशत, फर्नीचर तथा प्रतिदिन की उपस्थिति में रूचि रखते हैं। सकारात्मक पक्ष की अपेक्षा नकारात्मक पक्ष को अभिव्यक्त किया जाता है। केवल ध्वंसात्मक पक्ष की आलोचना प्रस्तुत की जाती है। परीक्षक खोज करने वाला होता है जो कि विद्यालय की त्रुटियों को बताने के लिए प्रयत्नशील रहता है, जबकि प्रधानाचार्य तथा शिक्षकगण समस्त प्रकार के साधनों से उसको प्रसन्न करने का प्रयत्न करते है। अतः निरीक्षण को केवल शिक्षकों में नैराश्य एवं असन्तोष उत्पन्न करने वाला कहा जाता है।''

माध्यमिक शिक्षा-आयोग तथा विद्वानों ने भी वर्तमान निरीक्षण-पद्धति के अधोलिखित दोषों की ओर संकेत दिया है।

i. वर्तमान निरीक्षण-पद्धति में निरीक्षण की स्थिति एक सहयोगी नेता के रूप में न होकर एक अधिनायक जैसी होती है। वह शिक्षकों को शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं के विषय में न तो बताने का अवसर देता है और न उनको अपनी मौलिकता सूझ-बूझ असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करता है। वह मित्र दार्शनिक तथा मार्गदर्शक न बनकर निरंकुश शासक बन जाता है इस कारण इसके द्वारा किया

गया विद्यालय निरीक्षण यदि क्रोध का विषय नहीं बनता है तो कुछ मात्रा तक भय उत्पन्न करने वाला विषय अवश्य बन जाता है। लाल ने लिखा है कि उसका प्रमुख कार्य फाइलों पर आदेश प्रदान करने तथा विद्यालय में दर्शन देने के लिए जाना है, जहाँ वह राजसी ठाठ-बाट जैसा स्वागत प्राप्त करता हैं। उससे अच्छी रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए सभी प्रकार से उसको सम्मान प्रदान किया जाता है।

ii. निरीक्षण-पद्धति का दूसरा दोष यह है कि विद्यालय-निरीक्षण केवल दिखावटी होते हैं निरीक्षकों द्वारा केवल खानापूरी की जाती है। वे निरीक्षण को प्रायः बड़े अन्यमनस्क ढंग से लापरवाही के साथ करते है। निरीक्षक अपने निरीक्षण की तिथियों से विद्यालय-अधिकारियों को पहले से सूचित कर देते है जिसके परिणामस्वरूप विद्यालय अधिकारी अपने कार्य की कमियों को पूरा कर लेते है। इसके अतिरिक्त उनका निरीक्षण भी प्रहार के समान होता है। वे लोग मुख्यतः प्रशासन, वितीय आदि मामलों की जाँच करके चले जाते है उनके द्वारा शिक्षा सम्बन्धी मामलों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है जो निरीक्षण का वास्तविक एवं महत्वपूर्ण अंग है। इनके द्वारा न तो शिक्षकों से उनकी शैक्षिक समसयाओं के विषय में पूछा जाता है। और न उसका किसी प्रकार से मार्ग प्रदर्शित किया जाता है। यहाँ तक कि शिक्षकों तथा निरीक्षकों के बीच किसी प्रकार का परिचय भी नहीं हो पाता। माध्यमिक शिक्षा आयोग का विचार है कि ''निरीक्षण दिखावटी होते है। निरीक्षक द्वारा विद्यालय-निरिक्षण के लिए जो समय प्रदान किया जाता है, वह अपर्याप्त है। इस अपर्याप्त समय काअधिकांश भाग दिन-प्रतिदिन के प्रशासकीय कार्य को दिया जाता हैः उदाहरणार्थ-विद्यालय के हिसाब-किताब तथा पत्र व्यवहार आदि को। शैक्षिक कार्यों के निरीक्षण के लिए बहुत कम समय दिया जाता है और शिक्षकों तथा निरीक्षकों के बीच सम्पर्क बहुत ही कम होते है।''

iii. निरीक्षण-पद्धति का यह दोष यह भी है कि निरीक्षकों का दृष्टिकोण रचनात्मक न होकर ध्वंसात्मक रहता है। वे निरीक्षण आलोचनात्मक एवं परीक्षात्मक दृष्टिकोण से करते है। उनके द्वारा निरीक्षण के पश्चात् त्रुटियों की एक बहुत लम्बी सूची बना दी जाती है। इस कारण निरीक्षण हर्षोत्पादक न बनकर भयोत्पादक होता है।

iv. शिक्षा के प्रचार के कारण विद्यालयों की संख्या में पर्याप्त रूप मे वृद्धि हो गई है। परन्तु वृद्धि के साथ-साथ निरीक्षकों की संख्या में वांछित अनुपात में वृद्धि नही हो पायी है, जिसके परिणामस्वरूप् वे अपने कार्य को सुचारु रूप् में नहीं कर पाते हैं, क्योंकि उन पर कार्य-भार बहुत अधिक है। माध्यमिक शिक्षा-आयोग का मत है, ''एक निरीक्षक की देखभाल में जिन स्कूलों को रखा गया है, उनकी संख्या अधिक है। इस कारण वह स्वयं को अपने वास्तविक कार्य- शैक्षिक कार्यक्रम की उन्नति- से परिचित भी नहीं करा पाता तथा अपनी समस्याओं का मूल्यांकन करने में भी असमर्थ रहता है।

v. वर्तमान निरीक्षण पद्धति में एक दोष विषयगत निरीक्षकों का अभाव भी पाया जाता है। एक निरीक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रत्येक विषय के शिक्षक के कार्य का निरीक्षण करे। इस सम्बन्ध में निरीक्षक की रुचि एवं योग्यता पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। यह प्रथा शैक्षिक रूप से त्रुटिपूर्ण

एवं हानिकार है क्योंकि वह केवल एक विषय का ही विशेषज्ञ हो सकता है तथा उसी विषय के शिक्षकों का उचित रूप से मार्गदर्शन कर सकता है।

2.7 भारत में विद्यालय निरीक्षण की वर्तमान स्थिति

पहले अधिनायकवादी दृष्टिकोण से अधिकारी बनकर अध्यापकों के कार्य का जायजा लिया जाता है, अब उसके स्थान पर पर्यवेक्षण संप्रत्यय आने से कार्य पद्धति तथा उसकी भावना में अन्तर आ गया है।

संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य की शिक्षा व्यवस्था संचालित करने का दायित्व स्वयं राज्य पर है। इस व्यवस्था को तथा नीति निर्धारण आदि कार्यों का सचिवालय करता है इन नीतियों और व्यवस्थाओं की सही स्थिति की देखभाल के लिए शिक्षा विभाग ने प्रत्येक राज्य के जिले में एक निरीक्षक नियुक्त किया है, जो निरीक्षण के द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों का मूल्यांकन करता है शिक्षा शास्त्रियों ने निरीक्षण सम्बन्धी नवीन धारणा की अभिव्यक्ति करने के लिये एक नवीन शब्द का प्रयोग किया है जो पर्यवेक्षण के नाम से जाना जाता है। यह केवल शब्दों का हेरफेर नहीं है वरन् उनमें उद्देश्य, क्षेत्र, विधि एवं दृष्टिकोण का भी बड़ा अन्तर है।

पहले प्रायः विद्यालय निरीक्षण एक ऑडीटर के समान कार्य करता था। सरकारी आडीटर वर्ष में दो-तीन दिन के लिए आता है और एक समय जितना हिसाब किताब देख सकता है, उसकी अशुद्धियों एवं कमियों को अपनी रिपोर्ट में लिखकर अपने उच्चाधिकारी के पास भेज देता है। इस रिपोर्ट के फलस्वरुप कुछ मास के पश्चात् विद्यालय को उन भूलों को ठीक करने का आदेश प्राप्त होता है। परन्तु जो त्रुटियाँ थोड़े समय के कारण उनकी दृष्टि में नहीं आई, वे ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। निरीक्षक अपनी अल्पकालीन जाँच में विद्यालय के समस्त अंगों व तत्वों का निरीक्षण नहीं कर सकता और न ही विद्यालय के कार्यकत्ताओं को रचनात्मक सुझाव हीं दे सकता है। उन्हें विकास के समुचित निर्देशन भी दिये जाने चाहिए।

एन.सी.ई.आर.टी. के एक सर्वेक्षण के अनुसार -

1. माध्यमिक या उच्च माध्यमिक विद्यालय में निरीक्षण अवधि में से 2 दिन (आकस्मिक निरीक्षण मात्र) पाई गई।

2.1/2 से 1 दिन शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य करने वाली संस्थाओं के निरीक्षण हेतु लगाया गया है।

3.वर्ष भर में एक इन्सपेक्टर प्रायः 120 दिन निरीक्षण करता है।

4.प्रायः विभिन्न राज्यों में एक वर्ष में औसतन 100 स्कूलों को देखता है।

एन0सी0ई0आर0टी0 के इस सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि निरीक्षण कम अवधि के कारण औपचारिक मात्र रह जाते हैं। जिला अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों के कारण कुछ विद्यालय ही एक वर्ष में देखे जा सकते हैं। अतः हर विद्यालय का नियमित निरीक्षण सम्भव नहीं हो पाता। जिला शिक्षा अधिकारी निरीक्षण के अतिरिक्त अनेक प्रशासनिक उत्तरदयित्वों में उलझा रहता है, जो उसके अधिक महत्वपूर्ण लगते हैं इस सम्बन्ध में नित्न सुझाव दिए जा सकते हैं।

1.प्रत्येक जिला स्तर पर अलग से ही एक शिक्षा अधिकारी हो, जो केवल शिक्षा के गुणातमक विकास के लिए कार्य करे। यही बात कोठारी आयोग ने भी सुझाई हैं

2.प्रशासनिक कार्य के लिए एक अतिरिक्त जिला शिक्षा अधिकारी हो सकता है।

3.निरीक्षण के लिए निरीक्षण कर्ताओं की संख्या बढ़ाई जा सकती हैं

4.निरीखण पूर्वसूचित व आकस्मिक दोनों हों और उनकी संख्या बढ़ाई जाए।

5.निरीक्षण कार्य की अवधि भी बढ़ाई जाए। जिससे विद्यालय का व्यापक मूल्यांकन सम्भव हो सके।

2.7.1 निरीक्षण प्रणाली मे सुधार हेतु सुझाव;

प्रचलित आदेशात्मक निरीक्षण पद्धति के दोषों व कमियो का निवारण सहयोगी व परामर्शदायी परिनिरीक्षण की नवीन धारणा से हो सकता है। इस विषय में यदि परिर्वतन किया जाए तो वर्तमान निरीक्षण पद्धति के बहुत-से दोषों का निवारण ही नहीं होगा, बल्कि उसकी उपयोगिता भी बढ़ जाएगी। विद्यालय के सामान्य निरीक्षण की प्रचलित पद्धति में निरीक्षकों की संख्या कम की जा सकती है जिसमें व्यय में बहुत अधिक वृद्धि न हो। सामानय प्रशासन से सम्बन्धित निरीक्षक विद्यालय संचालन के कार्यों का निरीक्षण करें तथा विशेषज्ञ, परामर्शदाता शैक्षिक कार्यक्रम की उन्नति के लिए अपनी सेवाएँ दें तो शिक्षा का स्तर अवश्य उन्नत होगा।

इस प्रकार की व्यवस्था से शिक्षकों को विशिष्ट विधियों जैसे संगीत, कला, हस्तकला, गृह विज्ञान में भी कुशल सेवाएँ प्राप्त हो सकेंगी। विद्यालयों में विशेषज्ञों, या निरीक्षकों या सलाहकारों तथा शिक्षकों के निकट सम्पर्क के फलस्वरूप स्वयं शिक्षकों में अपने विषय के लिए उत्साह होगा और वे अपनी शिक्षण योग्यता को सुधारने में अधिक रूचि लेंगे।

उपर्युक्त सुझाव के अतिरिक्त विद्यालय निरीक्षण का कार्य आन्तरिक स्तर पर भी होना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी विशेषज्ञ निरीक्षकों की नियुक्ति पर बल दिया है और शिक्षा आयोग ने प्रशासकीय तथा शैक्षिक कार्यों की देखभाल के लिए पृथक-पृथक् अधिकारियों की नियुक्ति का सुझाव दिया है।

2.7.2 भारत में निरीक्षण सुधार का प्रयास;

निरीक्षण के दोषों को दूर करके उसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए भारत में एक विशाल प्रोजेक्ट नेशनल इन्स्टीट्यूट आफॅ एजूकेशन के द्वारा लिया गया हैं इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अध्ययन-अध्यापन की परिस्थित का विशलेषण करके हर क्षेत्र के लिए सभी विषयों के सम्पूर्ण क्षेत्र को लेते हुए प्रश्नावलियाँ तैयार की गई हैं। पूरे देश में शिक्षाशास्त्रियों द्वारा इनकों प्रामाणिक बनाने के लिए प्रयोग चल रहा हैं प्रयोग की दो आवृतियाँ अब तक हो चुकी हैं। अपने अन्तिम स्परूप में तैयार होने के बाद यह प्रश्नावली सभी निरीक्षकों और पर्यवेक्षकों के पास भेज दी जायेगी आशा है तब उसी के अनुरूप पर्यवेक्षण होगे।

निरिक्षकों का एक समूह होगा, जिसमें सभी विषयों के विशेषज्ञ होंगे। ये लोग विद्यालयों में जाकर, पर्याप्त समय तक रूककर उनका विस्तृत निरीक्षण करेगे, समस्याओं का अध्ययन करेंगे और वैज्ञानिक ढंग उसके समाधान के लिए शिक्षकों को प्रेरणा देगें। शिक्षा का आदर्श पाठ भी प्रस्तुत कर सकते हैं।

आज निरीक्षण प्रणाली दोषपूर्ण हैं। परन्तु समाप्त नहीं करना चाहिए क्योंकि वयवस्था संचालन की निरीक्षण द्वारा सुदृढ़ बनाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में कुछ सुझाव अधोलिखित है-

1.निरीक्षकों का प्रशिक्षण तथा अभिविन्यास किया जाय जिससे निरीक्षण का कार्य समुचित ढंग से कर सकें

2.निरीक्षण हेतु पूर्व समय तथा तिथि का निर्धारण नहीं किया जाय। अचानक निरीक्षक पहुँच कर विद्यालय की वास्तविक परिस्थितियों तथा संचालन प्रक्रिया की जाँच कर सकें।

3.निरीक्षकों को अध्यापकों तथा प्राचार्य के साथ मीटिंग करनी चाहिए। उसमें विद्यालय की समस्याओं एवं कठिनाइयों पर विचार किया जाय। निरीक्षण अपनी रिपोर्ट में संस्तुतियाँ भी दे सके।

4.निरीक्षकों में विषय भी होने चाहिएं। निरीक्षण के बाद शिक्षण का आदर्श प्रदर्शन भी करना चहिए।

5.निरीक्षकों में अच्छे कार्यों तथा व्यवस्था हेतु मौखिक तथा रिपोर्ट मे प्रशंसा भी करनी चाहिए जिससे उन्हें पुनर्बलना भी मिल सके।

6.निरीक्षकों को छात्रों तथा शिक्षकों व कर्मचारियों से साक्षात्कार द्वारा भी कार्य विधि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिएं

7.निरीक्षकों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट का कार्यान्वयन भी होना चाहिए। उसका अनुसरण भी किया जाय।

8.निरीक्षकों को शिक्षा के नये आयामों एवं प्रवर्तनों की जानकारी तथा प्रर्शन भी करना चाहिए जिससे गुणात्मक सुधार किया जा सके। निरीक्षकों में सहकारिता, सहानुभूति तथा उदारता की भावना होनी चाहिए। जिससे निरीक्षण शिक्षा प्रशासन में सहायक प्रणाली का कार्य कर सकें।

9.निरीक्षकों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक तथा रचनात्मक होना चाहिए।

10.निरीक्षक ऐसे शिक्षक नियुक्ति किये जायें जो अपने-अपने विषय एवं क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान कर सकें।

2.8 पर्यवेक्षण की त्रुटियाँ

समय-समय पर शिक्षा आयोगों तथा अन्य शैक्षिक विचारकों ने पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण के जो दोष बताये हैं, वे लगभग सभी आज भी हैं। कई बार तो क्षुब्ध होकर शिक्षा-सुधारकों का कहना है कि यदि हम पर्यवेक्षण में सुधार नहीं ला सकते तो इसे समाप्त ही कर दिया जाये। लगभग 100 वर्ष पूर्व एच.एस.एस. लैरेन्स ने प्रचलित विद्यालय निरीक्षण पद्धति का निम्नलिखित शब्दों में बड़ा ही स्पष्ट चित्रण किया है-

‘‘बहुधा विद्यालय निरीक्षण की असावधानीपूर्वक अन्यमनस्क एवं असहानुभूतिपूर्ण कहकर आलोचना की जाती है। प्रायः निरीक्षण दिवस कुछ सीमा तक भयोत्पादक माने जाते हैं। निरीक्षक द्वारा केवल हिसाब-किताब

के मामलो पर बल दिया जाता है। इसके द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी मामलों पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।..... निरीक्षकगण केवल आँकड़ों, परीक्षाफलों के प्रतिशत फर्नीचर तथा प्रतिदिन की उपस्थिति में रूचि रखते हैं। सकारात्मक पक्ष की अपेक्षा नकारात्मक पक्ष को अभिव्यक्त करने में रूचि रखते हैं। सकारात्मक पक्ष की आलोचना प्रस्तुत की जाती हैं निरीक्षक खोज करने वाला होता है जो कि विद्यालय की त्रुटियों को बताने के लिए प्रयत्नशील रहता है, जबकि प्रधानाचार्य या शिक्षकगण समस्त प्रकार के साधनों से उसको प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हैं। अतः निरीक्षण को केवल शिक्षकों में नैराश्य एवं असन्तोष उत्पन्न करने वाला कहा जाता है।''

माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा शिक्षा आयोग ने पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण में निम्न दोषों का उल्लेख किया है -

1.वर्तमान पद्धति में पर्यवेक्षक की स्थिति एक 'सहयोगी के नेता के रूप में न होकर एक 'अधिनायक' जैसी होनी है।

2.स्कूल पर्यवेक्षक 'केवल दिखावा' होता है।

3.पर्यवेक्षकों का दृष्टिकोण 'रचनात्मक' न होकर 'ध्वंसात्मक' है।

4.पर्यवेक्षकों का अनुपात स्कूलों के अनुपात के अनुकूल नहीं है।

5.पर्यवेक्षक प्रशासनिक तथा प्रबन्धात्मक शिकायतों की जाँच में बहुत समय व्यतीत करते हैं।

6.पर्यवेक्षकों का कार्य प्रायः स्कूलों से विभिन्न प्रकार के आँकड़े एकत्रित करके मुख्याल में भेजना रह गया है।

7.पर्यवेक्षकों के उपयुक्त प्रशिक्षण का अभाव है।

2.8.1 पर्यवेक्षण में सुधार के उपाय

1. पर्यवेक्षण लचीला बनाया जाये।

2. पर्यवेक्षण एक सतत् प्रक्रिया के रूप में किया जाये।

3. पर्यवेक्षण को प्रबन्धन से अलग किया जाये।

4. पर्यवेक्षणकर्ताओं की संख्या बढ़ायी जाये।

5. पर्यवेक्षणकर्त्ताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये।

6. योग्य पर्यवेक्षणकर्त्ताओं की नियुक्ति की जाये।

7. पर्यवेक्षण पूर्व-नियोजित हो।

8. पर्यवेक्षणकर्त्ताओं के लिए स्कूलों में आने-जाने की समुचित सुविधाएँ प्रदान की जाये।

9. पर्यवेक्षण की रिपोर्ट स्कूलों में पर्यवेक्षण के एक सप्ताह के भीतर भेज दी जाये।

10. पर्यवेक्षण की रिपोर्ट पर उचित कार्यवाही की जाये।

11. उपर्युक्त संख्या में लड़कियों के स्कूलों के लिए स्त्री पर्यवेक्षणकर्त्ताओं की नियुक्ति की जाये।
12. पर्यवेक्षण की विभिन्न प्रक्रियाएँ प्रयोग में लायी जाये।
13. अध्यापकों के साथ विचार-विमर्श किया जाना चाहिए।
14. पर्यवेक्षण रिपोर्ट में ठोस सुझाव दिये जायें।
15. पर्यवेक्षण के आधार पर प्रतिभाशाली अध्यापकों को प्रोत्साहन दिया जाये।

\

2.9 शैक्षिक प्रशासन में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के अभिकरण

शैक्षिक प्रशासन में निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के निम्नलिखित अभिकरण है-

1.स्कूल एक आन्तरिक अभिकरण के रूप में।
2.शिक्षा निदेशालय बाह्य अभिकरण के रूप में (सरकारी पर्यवेक्षण)
3.राज्य शिक्षा बोर्ड बाह्य अभिकरण के रूप में (अर्द्ध-सरकारी पर्यवेक्षण)

आन्तरिक पर्यवेक्षण - स्कूल में पर्यवेक्षण के लिए आन्तरिक व्यवस्था की जाये। आन्तरिक पर्यवेक्षण के लिए प्रधानाध्यापक, विभिन्न विभागों के अध्यक्षों आदि को उत्तरदायी ठहराया जाय। दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का निवारण तो स्कूल में प्रधानाध्यापक स्वयं अपने अन्य सहयोगियों की सहायता व परामर्श से करे। जो समस्याएँ प्रधानाध्यापक की सामर्थ्य के बाहर है उनको सरकारी पर्यवेक्षकों को सुलझाना पड़ेगा। इस प्रकार सरकारी पर्यवेक्षकों तथा स्कूल अधिकारियों को सुलझाना पड़ेगा। इस प्रकार सरकारी पर्यवेक्षकों तथा स्कूल अधिकारियों के सम्मिलित प्रयासों द्वारा स्कूल में सुधार की दिशा में नई जागृति होगी तथा शिक्षा के क्षेत्र में जो धन, समय व शक्ति की हानि हो रही है, उसका सदुपयोग होगा। इस समय मानव संसाधनों की सबसे अधिक क्षति हो रही है जिसकी अविलम्ब रोकना अत्यावश्यक है।

स्कूल में आन्तरिक परिवीक्षण व्यवस्था

आन्तरिक परिवीक्षण व्यवस्था का अर्थ - आन्तरिक परिवीक्षण व्यवस्था से तात्पर्य है - कार्यक्रमों की गतिविधियों के साथ-साथ उनका अवलोकन करना तथा पाई गयी त्रुटियों में सुधार लाना। आन्तरिक परिवीक्षण की प्रक्रिया निरन्तर चलने वाली है। परिवीक्षण में आकलन निदान की दृष्टि से किया जाता है। परिवीक्षण प्रक्रिया में स्कूल का मुख्याध्यापक अनेक समितियों का निर्माण करता है जिसके सदस्य शिक्षक होते हैं। कभी-कभी इस कार्य में स्कूल के छात्र प्रतिनिधि या मॉनीटर भी शामिल किये जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर अभिभावक शिक्षक संघ का सहयोग भी लिया जाता है। आन्तरिक परिवीक्षण में जबावदेही को ध्यान में रखा जाता है।

परिवीक्षण का उद्देश्य कार्य में पारदर्शिता रखना है। परिवीक्षण स्कूल का आन्तरिक मामला है जिसमें स्कूल के कार्यों का स्कूल द्वारा निरीक्षण किया जाता है। अनियमितताओं को जानकर उनमें सुधार लाया जाता है।

स्कूल के परिवीक्षण में मुख्याध्यापक की अहम भूमिका है। परिवीक्षण में देखा जाता है कि स्कूल के सभी वर्ग अपना-अपना कार्य ठीक प्रकार से कर रहे हैं। यह आश्वासित किया जाता है कि सभी कर्मचारी अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं।

प्रधानाध्यापक तथा प्रबन्धन के पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण के कार्य

अध्यापकों तथा छात्रों के कार्य का निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण प्रायः प्रबन्धन मुख्याध्यपाक पर ही छोड़ता है। प्रबन्धन विशेष परिस्थिति में ही यह कार्य करता है।

प्रधानाध्यपाक अध्यापकों के पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण का कार्य दो प्रकार से करता है-

1. अनौपचारिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण
2. अनौपचारिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण।

1. औपचारिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण - प्रधानाध्यापक योजनाबद्ध पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण करता है। प्रत्येक अध्यापक तथा प्रत्येक विषय तथा प्रत्येक कक्षा का निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण करता है। पहले से ही कार्यक्रम बनाकर सम्बन्धित अध्यापकों को बता देता है कि वह कक्षा में जाकर कार्य देखेगा। वह कुछ समय कक्षा में जाकर अध्यापक के कार्य को देखता है। लिखित अथवा मौखिक रूप से अपने सुझाव देता है।

इसी प्रकार प्रोग्राम बनाकर छात्रों के लिखित कार्य का अपने कार्यालय में बैठकर निरीक्षण करता है तथा सम्बन्धित अध्यापक से चर्चा करता है। पर्यवेक्षण कार्य के लिए समय सारणी बनाता है।

2. अनौपचारिक पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण - प्रधानाध्यापक बिना सूचित किये अध्यापकों के कक्षा कार्य का तथा छात्रों द्वारा किये जा रहे कार्यों का पर्यवेक्षण करता है।

पर्यवेक्षक तथा निरीक्षक के रूप में प्रधानाचार्य के मुख्य कार्य

निरीक्षक तथा पर्यवेक्षक के रूप में उसके निम्न प्रमुख कार्य हैं -

1. अध्यापकों के कार्यों का निरीक्षण करके उन्हें समय-समय पर निर्देशन देना एवं प्रगति हेतु प्रेरित करना।
2. अध्यापकों द्वारा शिक्षण-कार्यों में अपनाई जाने वाली विधियों, प्रविधियों, प्रवृत्तियों, शिक्षा-दर्शन एवं सहायक सामग्री का निरीक्षण करना।
3. स्कूल की सम्पूर्ण गतिविधियों एवं अंगों का निरीक्षण करके उनमें सुधार लाने का प्रयास करना।
4. स्कूल में गठित की जाने वाली पाठ्य सहगामी क्रियाओं का निरीक्षण करना जिसके माध्यम से बालकों के व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास होता है।
5. स्कूल के भौतिक तत्वों, खेल एवं शारीरिक क्रियाओं, स्कूल सहकारी भण्डार, कैण्टीन आदि का निरीक्षण करते रहना।
6. स्कूल के पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं, भवन, फर्नीचर आदि का निरीक्षण करते रहना।
7. स्कूल में सम्पन्न होने वाली विभिन्न परीक्षाओं तथा प्रश्न-पत्रों का निरीक्षण करते रहना चाहिए, जिससे पाठ्य पुस्तक तथा प्रश्न-पत्रों में साम्यता बनी रहे।
8. अध्यापकों को विभिन्न पाठ्य पुस्तकों के चयन करने में परामर्श देना तथा पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन करके उपयोगिता की दृष्टि से निरीक्षण करना।
9. अभिभावकों से सम्पर्क बनाये रखना तथा ऐसी बातों का निरीक्षण करना जिनसे स्कूल और अभिभावकों के मध्य सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो सके।
10. स्कूल के ऐसे तत्वों का निरीक्षण करते रहना एवं उन पर नियन्त्रण रखना जिनसे स्कूल को हानि होने की सम्भावना बनी रहती हो।

11. स्कूल में छात्रों की प्रवेश संख्या, शिक्षकों की संख्या तथा अन्य कर्मचारियों की संख्या में सन्तुलन बनाये रखने हेतु निरीक्षण करना।
12. छात्र-जीवन से सम्बन्धित स्कूल के आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की क्रियाओं का निरीक्षण करना।
13. कार्यालय के कार्य का निरीक्षण समय-समय पर करते रहना।
14. स्कूल के विभिन्न रजिस्टरों की देखरेख करते रहना तथा उन पर नियन्त्रण रखना।
15. छात्रावास का निरीक्षण करते रहना।

2.10 सारांश

विद्यालय निरीक्षक विद्यालयों में जाकर अनिवार्य रूप से वर्ष में कम-से-कम एक बार निरीक्षण कार्य करते हैं। यह पद्धति हमारी शिक्षा नीति का महत्वपूर्ण अंग है। इस तरह की परम्परागत निरीक्षण पद्धति ब्रिटिश काल से चली आ रही है और उसमें लेखमात्र परिवर्तन नहीं हुआ। यह निरीक्षण आदेशात्मक कहलाता है। निरीक्षक एक ऊँचे पदाधिकारी के रूप में विद्यालयों में जाता है और उसके वहाँ जाने से ही भय का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। रायबर्न के अनुसार उसका पद निरंकुशतापूर्ण माना जाता है इसका मुख्य कारण यह है कि वह निरीक्षण में रचनात्मक पक्ष को ज्यादा महत्व नहीं देता और अपनी निरीक्षण रिपोर्ट में नकारात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण पर ज्यादा बल देता है। इसके अलावा माध्यमिक शिक्षा आयोग ने निरीक्षण को दिखावटी बताया है क्योंकि वह विद्यालय निरीक्षण के लिए जो समय प्रदान करता है, वह अपर्याप्त है। यह निरीक्षण के बाद त्रृटियों की एक लम्बी सूची बना देता है जिसके कारण प्रधानाध्यापक तथा शिक्षक परेशान रहते हैं। अतः उसके निरीक्षण का प्रयोजन सफल नहीं हो पाता और यह प्रथा शैक्षिक रूप से हानिकारक भी सिद्ध हुई हैं आधुनिक प्रवृत्ति के अनुसार इसमें अब धीरे-धीरे सुधार होता जा रहा है ताकि निरीक्षण पथ-प्रदर्शक बन सके।

2.11 शब्दावली

1. शिक्षण विधियाँ - शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु शिक्षण प्रक्रिया के दौरान प्रयोग किए जाने वाले भिन्न-भिन्न तरीकों जिससे शिक्षण को प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया जाता है।
2. प्रशिक्षित - कौशलों में दक्षता लाने के लिए निश्चित प्रक्रिया से गुजरना।
3. वस्तुनिष्ट - किसी भी चीज़ का परिणाम विभिन्न व्यक्तियों से समान आए तो वह वस्तुनिष्ट कहलाती है।
4. अनुसंधान - ज्ञान के किसी भी क्षेत्र या शाखा में नवीन तथ्यों, विचारों, अवधारणा या सिद्धान्त की खोज के लिए अपनाई गई क्रमबद्ध प्रक्रिया अनुसंधान कहलाती है।

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. इंग्लैड
2. बर्टन

3. हन्टर कमीश्न

2.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. माध्यमिक शिक्षा एवं विद्यालय प्रबन्धन (2009) अवधेश किशोर, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
2. शैक्षिक प्रशासन एवं स्वास्थ शिक्षा (2013) सविता सिंह, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
3. स्कूल प्रबन्धन सूचना तथा सम्प्रेषण तकनीकी (2010) जे0पी0 अग्रवालए अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
4. शैक्षिक प्रबन्धन के मूल तत्व (2009) देवदत्त शर्मा, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।

2.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. विद्यालय प्रशासन, संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा (2009) एव0पी0 सुखियाए अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
2. शिक्षा प्रशासन (2010) उमेश चन्द्र कुदेसिया एअग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
3. विद्यालय प्रबन्धन, (2008), आर0ए0शर्मा, आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
4. विद्यालय प्रबन्धन (2008) जे0पी0 वर्मा, आर लाल। बुक डिपो, मेरठ।
5. शैक्षिक संगठन, स्वास्थ्य शिक्षा एवं शिक्षण तकनीकी, डी0पी0 मिश्रा, अग्रवाल पब्लिकेशन
6. शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन डा0 कर्ण सिंह, गोविन्द प्रकाशन, लखीमपुर खीरी।

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1.वर्तमान विद्यालय निरीक्षण पद्धति के दोषों का वर्णन कीजिए आप इस पद्धति में सुधार के लिए क्या सुझाव देगें?

इकाई 3 : सम्प्रेषण : अर्थ , उद्देश्य एवं प्रकार

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 सम्प्रेषण का अर्थ
3.4 सम्प्रेषण के उद्देश्य
3.5 सम्प्रेषण के प्रकार
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सम्प्रेषण की प्रक्रिया हमारे सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है। सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत सूचनाओंए निर्देशों तथा निर्णयों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुचाना अत्यंत आवश्यक होता है क्यूंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं एवं समस्याओं के हल हेतु दूसरे व्यक्ति की सहायता पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर होता है। समाज के सभी सदस्य किसी समस्या पर विचार.विमर्श करते है तथा उसका उपयुक्त समाधान खोजने का प्रयास करते है इसप्रकार से प्राप्त समाधान जिसमे अधिकांश लोगो की सहभागिता तथा विचारध्मत शामिल होता है अधिक कारगर साबित होते है। समाज अपनी नयी पीढ़ी को संस्कृति से परिचित करने के लिए भी औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से विचारों को उन तक पहुचाने का प्रयास करता है। व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों का आधार उनकी आवश्यकताएँ एवं समस्याएँ होती है इन आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के हल हेतु विचारों का परस्पर आदान.प्रदान करना पड़ता है। सामाजिक सम्बन्धों का निर्वहन विचार विनिमय के बिना संभव नहीं है व्यक्तियों के मध्य विचारों का यही आदान.प्रदान सम्प्रेषण है । प्रस्तुत इकाई में आप सम्प्रेषण का अर्थए सम्प्रेषण के उद्देश्य तथा सम्प्रेषण के प्रकार के बारे में अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- सम्प्रेषण का अर्थ क्या है बता सकेंगे।

- सम्प्रेषण के विभिन्न उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
- सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 सम्प्रेषण का अर्थ

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में आने वाली समस्याओं के हल हेतु या अन्य किसी कारण से दूसरे लोगों से सूचनाओंध्विचारों का आदान प्रदान करता है या सामान्य भाषा में कहा जाए कि अपनी भावनाओं, विचारों, समस्याओं से दूसरे लोगों को अवगत कराने के लिए या दूसरे व्यक्ति की समस्या से स्वयं परिचित होने के लिए सूचनाओं का आदान प्रदान करता है। किसी भी कारण से परस्पर सूचनाओं तथा विचारों का आदान प्रदान करना ही सम्प्रेषण है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने का प्रयास किया जाता है। इसमें अनुभवी व्यक्तियों द्वारा कम अनुभवी व्यक्तियों के व्यक्तित्व का विकास विभिन्न तरीकों एवं साधनों की सहायता से किया जाता है। अब आप लोग यह बात आसानी से समझ गए होंगे कि शिक्षा की प्रक्रिया बिना सम्प्रेषण के संभव नहीं है क्योंकि शिक्षा और शिक्षण में शिक्षक प्रशिक्षक विद्यार्थियों के समक्ष अपने विचारों को प्रकट करते हैं। विद्यार्थियों से प्रश्न पूछते हैं। विद्यार्थी प्रतिक्रिया उत्तर देते हैं अपनी शंकाओं के समाधान हेतु शिक्षक से प्रश्न भी पूछते हैंए शिक्षक विद्यार्थियों की प्रशंसा या आलोचना भी करते हैंए अपने ज्ञानएकौशल एवं अनुभव से उनकी जिज्ञासाओंध्कठिनाइयों का निवारण कर उनका ज्ञानवर्धन करते हैं। उपरोक्त क्रियाओं से यह स्पष्ट है कि सम्प्रेषण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बिना सम्प्रेषण के शिक्षा की प्रक्रिया संभव ही नहीं है।

सम्प्रेषण शब्द अंग्रेजी के कम्युनिकेशन Communication का हिन्दी पर्यायवाची शब्द है। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द communes से मानी जाती है। communes शब्द का अभिप्राय है Common या सामान्य। अतः कहा जा सकता है कि सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति परस्पर सामान्य अवबोध के माध्यम से आदान-प्रदानकरने का प्रयास करता हैं। व्यक्ति अपने विचार अभिव्यक्त करते समय केवल मुंह से बोलता नहीं है अपितु साथ-साथ हाव-भाव मुख मुद्रा तथा मुख-भंगिमाओं का प्रयोग करके भाषण वक्तव्य को प्रभावशाली बनाने का प्रयास करता है। अतः कहा जा सकता है कि सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने ज्ञानए हाव.भाव तथा मुख मुद्रा तथा विचारों आदि का परस्पर आदान.प्रदान करते हैं तथा इस प्रकार से प्राप्त प्राप्त विचारों अथवा संदेशों को समान तथा सही अर्थों में समझने और प्रेषण करने में उपयोग करते हैं।

एंडरसन के अनुसार सम्प्रेषण एक गत्यात्मक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति चेतनतया अथवा अचेतनतया दूसरों के संज्ञानात्मक ढाँचे को सांकेतिक हाव-भाव आदि रूप में उपकरणों या साधनों द्वारा प्रभावित करता है।

लीगंस के अनुसार सम्प्रेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा दो या दो से अधिक लोगए विचारों, तथ्यों,भावनाओं तथा प्रभावों आदि का इस प्रकार परस्पर विनिमय करते हैं कि सभी लोग प्राप्त संदेशों को समझ जाते हैं।

सम्प्रेषण में संदेश देने वाले तथा संदेश ग्रहण करने वाले के मध्य संदेशों के माध्यम से समन्वय स्थापित किया जाता है।

एडगर डेल- सम्प्रेषण विचार-विनिमय के मूड में विचारों तथा भावनाओं को परस्पर जानने तथा समझने की प्रक्रिया है।

सम्प्रेषण के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं.

- सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कोई विचार एक श्रोत से प्राप्त कर्ता तक भेजने का प्रयास किया जाता है ताकि प्राप्तकर्ता का व्यवहार परिवर्तन हो जाए।
- सम्प्रेषण सूचना का प्रेषक से प्राप्तकर्ता तक इस प्रकार से स्थानांतरण है कि सूचना प्राप्तिकर्ता द्वारा समझी जा सके।

सम्प्रेषण की प्रकृति एवं विशेषताएँ

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर सम्प्रेषण की निम्नलिखित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं -
1 सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जिसमें पारस्परिक सम्बंध स्थापित किया जाता है।
2 इसमें विचारों के आदान.प्रदान पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
3 यह द्विध्रुवीय प्रक्रिया है अर्थात इसमें दो पक्ष होते हैं। एक संदेश देने वाला तथा एक दूसरा संदेश ग्रहण करने वाला।
4 यह एक उद्देश्ययुक्त प्रक्रिया है।
5 सम्प्रेषण प्रक्रिया में प्रत्यक्षीकरण समावेशित होता है।
6 सम्प्रेषण की प्रक्रिया में परस्पर अंतःक्रिया तथा पृष्ठ.पोषण होना आवश्यक होता है।
7 सम्प्रेषण में विचारों या सूचनाओं को मौखिक, बोलकर, लिखित, लिखकर, अथवा सांकेतिक,संकेतों के रूप में प्रेषित किया जाता है एवं ग्रहण किया जाता है।
8 सम्प्रेषण सदैव गत्यात्मक होता है।

सम्प्रेषण की प्रक्रिया

सम्प्रेषण की प्रक्रिया के दो मॉडल लोकप्रिय हैं। पहले मॉडल के अनुसार संदेश भेजने वाला व्यक्ति पहले स्वयं संदेश लिखता है फिर किसी न किसी माध्यम के द्वारा ;जैसे. रेडियो, टेलीफोन, तार, भाषण आदि संदेश प्रेषित किया जाता है। प्रेषित संदेश जहाँ पहुँचता है वहाँ उसे पढ़ कर कम व कम करते हैं और संदेश जिसके लिए है उस तक उसे पहुंचाते हैं। यह व्यक्ति यदि आवश्यकता होती है तो संदेश प्राप्ति की सूचना देता है।

दूसरे मॉडल के अनुसार सर्वप्रथम संदेश देने वाला व्यक्ति संदेश का निर्माण करता हैए लिखता है और उसे आवश्यकतानुसार प्रसारित करता है। यह संदेश या विषयवस्तु सूत्र के रूप में या अन्य किसी शाब्दिक अथवा

अशाब्दिक माध्यम के द्वारा संदेश ग्रहण करने वाले व्यक्ति तक पहुंचाया जाता है। संदेश ग्रहण करने वाला प्राप्त संदेश को पढ़ता है ,उसे समझता है तथा आवश्यकतानुसार प्राप्त संदेश के अनुकूल उचित माध्यम से संदेश वाहक तक अपना प्रत्युत्तर पहुंचाता है। इस मॉडल के अनुसार सम्प्रेषण प्रक्रिया में संदेश और संदेश का प्रत्युत्तर दोनों ही समावेशित रहता है। इस प्रकार आप समझ गए होंगे कि सम्प्रेषण की प्रक्रिया में किन-किन तत्वों की भूमिका होती है।

सम्प्रेषण प्रक्रिया के तत्व

उपरोक्त मॉडलों के आधार पर सम्प्रेषण प्रक्रिया में निम्नांकित तत्वों का होना आवश्यक होता है.

1 **सम्प्रेषण सन्दर्भ-** सम्प्रेषण की प्रक्रिया में भौतिक सन्दर्भ जैसे-स्कूल, शिक्षण कक्ष आदि होते हैं। सामाजिक सन्दर्भ के अंतर्गत कक्षा या विद्यालय का वातावरण आता है। मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ के अन्तर्गत औपचारिकता अथवा अनौपचारिकता आती है। दिन का समय तथा समय की अवधि समय सन्दर्भ के अन्तर्गत आते हैं।

2 संदेश का श्रोत- संदेश का श्रोत या तो वह व्यक्ति होता है जो शाब्दिक या अशाब्दिक संकेत प्रदान करते हैं या वह घटना होती है जिससे शाब्दिक या अशाब्दिक संकेत प्राप्त समझने का प्रयास किया जाता है। जब यह व्यक्ति होता है तो उसे संदेश भेजने वाला कहते हैं। संदेश भेजने वाला ही संदेश की विषयवस्तु निर्धारित करता है उसकी कोडिंग करता है एवं उचित माध्यम का चुनाव करके उसे प्रसारित भी करता है। सम्प्रेषण प्रक्रिया संदेश श्रोत से ही प्रारम्भ होती है। संदेश भेजने वाला संदेश का वांछित प्रभाव डालने के लिए हर संभव प्रयास करता है।

3 संदेश- संदेश एक उद्दीपक होता है जो संदेश भेजने वाला भेजता है। संदेश मौखिक या लिखित संकेतों के रूप में हो सकता है तथा व्यक्ति की मुखमुद्रा या हावभाव के रूप में हो सकता है। संदेश पोस्टर या चार्ट के द्वारा किसी आकृति- संकेत के माध्यम से प्रेषित किया जा सकता है या सूचना पैकेज के रूप में भी इसे विभिन्न माध्यमों से भेजा जा सकता है।

4 सम्प्रेषण का माध्यम- सम्प्रेषण का माध्यम वह साधन होता है जिसके द्वारा कोई संदेश संदेश.श्रोत से संदेश प्राप्त करने वाले तक पहुंचता है। माध्यम प्रत्यक्षीकरण की संवेदनाएं होती हैं जो दिखने वाली सुनने वाली स्पर्श करने वाली स्वाद बताने वाली अथवा गन्ध बताने वाली हो सकती हैं।

5 संकेत या प्रतीक- ये प्रतीक या संकेत वे हैं जो किसी अन्य चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये संकेत शाब्दिक अथवा अशाब्दिक भी हो सकते हैं। शब्दए स्वयं में संकेत या प्रतीक होते हैं।

6 एनकोडिंग- एनकोडिंग वह प्रक्रिया है जिसमें किसी विचार या भावना की अभिव्यक्ति के लिए संकेतों या प्रतीको का प्रयोग किया जाता है।

7 डीकोडिंग- यह वह प्रक्रिया होती है जिसमें संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति संदेश श्रोत से प्राप्त संकेतों का कूट अनुवाद कर संदेश ग्रहण करता है।

8 पृष्ठपोषण- यह वह प्रतिउत्तर होता है जो संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्तिए संदेश प्राप्त करने के पश्चात संदेश भेजने वाले के पास प्रेषित करता है।

9 संदेशग्रहणकर्ता- संदेश ग्रहण कर्ता वह व्यक्ति है जो सम्प्रेषण की प्रक्रिया में संदेह श्रोत द्वारा भेजे गए संदेश प्राप्त करता है जैसे. श्रोताए दर्शकए पत्र.पत्रिकाओं के पाठक आदि।

3.4 सम्प्रेषण के उद्देश्य

सम्प्रेषण के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं.

1 सम्प्रेषण का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के सामाजिक जीवन में गतिशीलता लाना है।
2 सम्प्रेषण के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक विचारोंध्भावनाओं को प्रेषित किया जाता है।
3 सम्प्रेषण का उदेश्य अनुभवी व्यक्तियों द्वारा अपने अनुभवों तथा विचारों को अपने से कम अनुभव वाले व्यक्ति तक पहुचाना है।
4 सम्प्रेषण शिक्षण.अधिगम प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता है।
5 सम्प्रेषण का उद्देश्य विचारोंध्सूचनाओं का परस्पर आदान.प्रदान करना होता है।
6 सम्प्रेषण का उद्देश्य मानवीय तथा सामाजिक वातावरण को बनाये रखना तथा उसे सुदृढ करना होता है।
7 सम्प्रेषण के द्वारा निर्देश अथवा आदेश या संदेश प्रेषित करना होता है।
8 सम्प्रेषण शिक्षक द्वारा शिक्षार्थियों तक विषय संबंधी तथ्य एवं संकल्पनाओं को पहुचाने एवं समझाने का कार्य करता है।
9 सम्प्रेषण द्वारा एक व्यक्ति अपनी समस्याओं से दूसरे व्यक्तियों को परिचित कराता है।
10 सम्प्रेषण का उद्देश्य विद्यार्थियोंए श्रोताओं एवं पाठकों को विभिन्न प्रकार के विचारोंध्सूचनाओं से परिचित करना होता है।
11 सम्प्रेषण का उद्देश्य संदेश.श्रोत से संदेश ग्रहण कर्ता तक प्रभावशाली तरीके से संदेश पहुंचाना होता है।
उपरोक्त उद्देश्यों से आप यह समझ गए होंगे कि बिना सम्प्रेषण के शिक्षा प्रदान करना संभव नहीं है।

3.5 सम्प्रेषण के प्रकार

सम्प्रेषण को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-शाब्दिक तथा अशाब्दिक शैक्षिक तथा लोक सार्वजनिक सम्प्रेषण आदि।

1 शाब्दिक सम्प्रेषण

ऐसा सम्प्रेषण जिसमें सदैव भाषा का प्रयोग होता हैए शाब्दिक सम्प्रेषण कहलाता है। इसमें भाषा का प्रयोग या तो मौखिक रूप से या लिखित रूप में शब्दों अथवा संकेतों के द्वाराए विचार अथवा भावनाओं को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया जाता है। शाब्दिक सम्प्रेषण को पुनः दो प्रकार के सम्प्रेषणों में वर्गीकृत किया जा सकता है. -मौखिक सम्प्रेषण व लिखित सम्प्रेषण।

मौखिक सम्प्रेषण - मौखिक सम्प्रेषण में तथ्यों एवं सूचनाओं का आदान. प्रदान मौखिक रूप से होता है। इस विधि में संदेश देने वाला तथा संदेश ग्रहण करने वाला दोनों ही परस्पर आमने सामने होता हैं। मौखिक सम्प्रेषण में वार्ताए व्याख्यानए परिचर्चाए समूहिक चर्चाए प्रश्नोत्तर तथा कहानी के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति की जाती है। इसका एक उदाहरण एक शिक्षक द्वारा कक्षा में विद्यार्थियों के समक्ष दिया गया व्याख्यान है।

लिखित सम्प्रेषण - इसमें संदेश देने वाले तथा संदेश पाने वाले व्यक्तियों का आमने.सामने होना आवश्यक नहीं है। इसमें सन्देश लिखित रूप में शब्दों या संकेतों के रूप में होता है। सन्देश प्राप्त करने वाला इन्ही शब्दों या संकेतों के माध्यम से सन्देश भेजने वाले की भावना को समझ लेता है। इस सम्प्रेषण में सन्देश की भाषा सरल सुगम स्पष्ट तथा आसानी से समझ में आने वाली हो ताकि संदेश बिना किसी भ्रम के सही रूप में ग्रहणकर्ता ग्रहण कर सके। लिखित संप्रेषण का एक उदाहरण दूरस्थ शिक्षा के पाठ्यक्रमों की स्वअधिगम सामग्री है।

2 अशाब्दिक सम्प्रेषण

अशाब्दिक संप्रेषण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है इसमें शरीर के हाव.भावए मुख मुद्रा एवं स्पर्श संपर्क,भाव,भंगिमाओं के माध्यम से संदेश प्रेषित किया जाता है। अशाब्दिक संप्रेषण निम्नलिखित प्रकार के होते है.

वाणी संप्रेषण इस संप्रेषण में विचारों तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत रूप से अथवा छोटे समूहों में आमने.सामने रह कर वाणी द्वारा की जाती है। उदाहरण के लिए बात.चित के बीच.2 में हाँ.हाँ कहना या हूँ.हूँ कहते चले जाना या मुसकुरानाए चीखनाए ठहाके लगाना आदि।

चक्षु संपर्क एवं मुख्य मुद्राएँ व्यक्तिगत संप्रेषण में चक्षु संपर्क तथा मुख मुद्राओं का प्रदर्शन अत्यन्त प्रभावशाली माना जाता है। कक्षा में चक्षु संपर्क के द्वारा शिक्षक अपने छात्रों की मनःस्थिति का सही.सही आकलन करने में सफल होते है इसी के द्वारा वह विद्यार्थियों के मुख.मुद्राओं से संवेगों की स्थिति समझ जाते है जैसे प्रसन्नताए भयए क्रोधए शोक तथा आश्चर्य आदि का संप्रेषण आसानी से होता है। मुक.बधिर व्यक्तियों के लिए यह संप्रेषण अत्यन्त उपयोगी है।

स्पर्श संपर्क स्पर्श संपर्क में स्पर्श को ही संप्रेषण का प्रमुख माध्यम बनाया जाता है। स्पर्श के माध्यम से व्यक्ति अपनी भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है। हाथ मिलाने के तरीके से ही अंदाजा लग जाता है की यह हाथ दोस्ती का है या दुश्मनी का है। माँ के हाथ का एक स्पर्श मात्र उसके शिशु को बहुत

कुछ कह देता है। प्रशंसा के एक शाबाशी प्यार का एक चुंबन अपने आप बहुत सी भावनाओं, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। दृष्टिहीन छात्रों के लिए स्पर्श संप्रेषण का बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी साधन है।

उपयोग के आधार पर संप्रेषण को शैक्षिक तथा लोक संप्रेषण के दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

शैक्षिक संप्रेषण

शैक्षिक संप्रेषण से तात्पर्य शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किये गए संप्रेषण से होता है इसमें संदेश का स्रोत शिक्षक होता है तथा विद्यार्थी संदेश ग्रहण करने वाले होते है इसमें पाठ्यक्रम की विषयवस्तु या सहगामी क्रियाएँ संदेश के रूप में होती है। शिक्षक छात्रों को विषयवस्तु स्पष्ट करने के लिए शैक्षिक संप्रेषण में शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनों ही प्रकार के संप्रेषणों का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से करने का प्रयास करता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक तथा विद्यार्थियों को एक साथ मिलकर कार्य करने के क्षेत्र में संप्रेषण एक प्रमुख साधन के रूप में कार्य करता है। शिक्षक शिक्षण से पूर्व पाठयोजना बनाता है। शिक्षण हेतु उपयुक्त विधियों एवं प्रविधियों का चुनाव करता है। शाब्दिक एवं अशाब्दिक माध्यमों से विषय वस्तु को समझाने में संप्रेषण का प्रयोग करता है। जब तक शिक्षक संप्रेषण की कला में निपुण नहीं होगा वह अपने शिक्षण को सफल एवं प्रभावशाली नहीं बना सकेगा। शैक्षिक संप्रेषण अधिकांशतः द्विध्रुवीय होता है। इसमें शिक्षक अपनी बात कहता है इसके बाद विद्यार्थी अपनी जिज्ञासाओं एवं शंकाओं को शिक्षक के समक्ष प्रस्तुत करके उनका समाधान प्राप्त करते हैं। शिक्षक को भी विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं से अपने शिक्षण के प्रति छात्रों से धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही प्रकार की प्रतिपुष्टि प्राप्त होती है जिसकी मदद से वह अपने शिक्षण को और अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास करता है। शैक्षिक सम्प्रेषण को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अच्छे शिक्षक शिक्षण के दौरान उचित शिक्षण सहायक सामग्रियों का प्रयोग करते हैं। शिक्षण सहायक सामग्रियों के प्रयोग से सम्प्रेषण और अधिक प्रभावशाली हो जाता है जिस कारण शिक्षण भी प्रभावशाली हो जाता है। इस प्रकार आप यह जान गए होंगे कि किसी भी शिक्षक का शिक्षण तभी प्रभावशाली होगा जब वह सम्प्रेषण की कला में निपुण होगा।

लोक सम्प्रेषण

लोक सम्प्रेषण से तात्पर्य अपने विचार या अपनी बात को असंख्य लोगों तक पहुंचाना होता है। इस सम्प्रेषण में संदेश को समूहिक रूप से प्रसारित किया जाता है। इस प्रकार के सम्प्रेषण में अधिकांशतः संदेश देने वाले व्यक्ति से आमने.सामने बात नहीं हो सकती है। इस कारण संदेश की भाषा अत्यन्त ही सरलए सुबोध एवं सहज होती है जिससे कि जन.जन तक पहुंचे संदेश में किसी प्रकार की भ्रांति न रहे। लोक सम्प्रेषण के अंतर्गत रेडियोए टेलीविज़नए समाचार पत्रए पत्रिकाओंए पुस्तकोंए वीडियो फिल्मों तथा विज्ञापन बोर्डों का प्रयोग

किया जाता है। ये सभी साधन महत्वपूर्ण विचारोंध्सूचनाओंध्खबरों को अधिक से अधिक लोगों तक आसानी से पहुँचाने का कार्य करते हैं। राष्ट्र के विकास में लोक सम्प्रेषण का बहुत बड़ा हाथ होता है। लोक सम्प्रेषण में जनसंचार माध्यम का प्रयोग किया जाता है। जनसंचार माध्यमों के द्वारा विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है जिससे बहुत अधिक संख्या में विद्यार्थीध्व्यक्ति लाभान्वित होते हैं। वर्तमान में मुक्त विश्वविद्यालय लोक सम्प्रेषण का प्रयोग करके सुदूर क्षेत्रों में शिक्षा सुलभ करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

3.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के प्रारम्भ में आपने सम्प्रेषण का अर्थ समझा। सम्प्रेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे व्यक्ति परस्पर सामान्य अवबोध के माध्यम से सूचनाओं तथा विचारों का आदान.प्रदान करते हैं। इस इकाई के अंतर्गत सम्प्रेषण की प्रकृति एवं विशेषताओं का अध्ययन किया। आपने यह समझा कि सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जो द्विध्रुवीय हैए गत्यात्मक हैए उद्देश्यपूर्ण है तथा पारस्परिक संबंध स्थापित करती है। इसमें विचारों को मौखिकए लिखित अथवा सांकेतिक रूप में प्रेषित किया जाता है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया के अन्तर्गत आप यह समझ गए होंगे कि संदेश श्रोतध् संदेश भेजने वाला व्यक्ति किसी न किसी माध्यम से संदेश प्राप्तकर्ता तक संदेश पहुंचाता है। संदेश प्राप्त.कर्ता संदेश प्राप्ति की सूचना भी देता है। इस इकाई के मध्य में सम्प्रेषण के सभी तत्वों पर प्रकाश डाला गया तथा सम्प्रेषण के उद्देश्यों के बारे में भी आपने अध्ययन किया। सम्प्रेषण का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के सामाजिक जीवन में गतिशीलता लाना है। सम्प्रेषण के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक विचारों भावनाओं को प्रेषित किया जाता है। इस इकाई के अंत में आपने सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों.शाब्दिकए अशाब्दिकए शैक्षिक एवं लोक सम्प्रेषण के बारे में अध्ययन किया। शाब्दिक सम्प्रेषण में भाषा का प्रयोग किया जाता है। इसके दो प्रकार. मौखिक एवं लिखित होते हैं। मौखिक एवं लिखित संप्रेषणों को आप उदाहरणों के माध्यम से समझ गए होंगे। अशाब्दिक सम्प्रेषण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। भाषा के स्थान पर वाणी संकेतए चक्षु संपर्क तथा मुख मुद्राओं के प्रयोग एवं स्पर्श.संपर्क आदि का प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक सम्प्रेषण में शिक्षक विद्यार्थियों को अपनी विषय.वस्तु को स्पष्ट करने के लिए शाब्दिक या अशाब्दिक माध्यमों का प्रयोग करता है। सम्प्रेषण के बिना शिक्षा असंभव है। यह भी आपने समझा। लोक सम्प्रेषण से अभिप्राय सूचनाए विचारों और अवकाश के सदुपयोग हेतु मनोरंजक गतिविधियों का सम्प्रेषण संचार माध्यमों द्वारा जन.जन तक व्यापक प्रसार करना है।

3.7 शब्दावली

सम्प्रेषण: किसी भी कारण से परस्पर सूचनाओं तथा विचारों का आदान प्रदान करनाध्होना ही सम्प्रेषण है तथा सम्प्रेषण हेतु हमेशा माध्यम की आवश्यकता होती है।

सम्प्रेषण संदर्भ: सम्प्रेषण संदर्भ का अर्थ है भौतिकए सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियां जैसे भौतिक संदर्भ में कक्षा तथा स्कूलए सामाजिक संदर्भ में कक्षा या विद्यालय का वातावरण एवं मनोवैज्ञानिक संदर्भ में औपचारिकता तथा अनौपचारिकता आती है।

एनकोडिंग : एनकोडिंग वह प्रक्रिया है जिसमें किसी विचार या भावना की अभिव्यक्ति के लिए संकेतों या प्रतीको का प्रयोग किया जाता हैअर्थात संदेश को भेजने का कार्य करते है।

डिकोडींग : यह वह प्रक्रिया होती है जिसमें संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति संदेश श्रोत से प्राप्त संकेतों का कूट अनुवाद कर संदेश ग्रहण करता है अर्थात संदेश को ग्रहण कर उसी के अनुरूप क्रिया करता है।

पृष्ठपोषण : यह वह प्रतिउत्तर होता है जो संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्तिए संदेश प्राप्त करने के पश्चात संदेश भेजने वाले के पास प्रेषित करता है । इससे यह पता चलता है कि संदेश प्रपट करने वाले व्यक्ति को संदेश के विषय में सभी तथ्यों की जानकारी हुई या नहीं।

शाब्दिक सम्प्रेषण : ऐसा सम्प्रेषण जिसमें सदैव भाषा का प्रयोग होता हैए शाब्दिक सम्प्रेषण कहलाता है। इसमें भाषा का प्रयोग या तो मौखिक रूप से या लिखित रूप में शब्दों अथवा संकेतों के द्वाराए विचार अथवा भावनाओं को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

अशाब्दिक सम्प्रेषण :अशाब्दिक संप्रेषण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है इसमें शरीर के हाव.भावए मुख मुद्रा एवं स्पर्श संपर्क.भाव.भंगिमाओं के माध्यम से संदेश प्रेषित किया जाता है ।

लोक सम्प्रेषण : लोक सम्प्रेषण का अर्थ है अपने विचार या अपनी बात को असंख्य लोगों तक पहुंचाना होता है। इस सम्प्रेषण में संदेश को समूहिक रूप से प्रसारित किया जाता है।

शैक्षिक सम्प्रेषण : शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किये गए संप्रेषण से होता है इसमें संदेश का स्रोत शिक्षक होता है तथा विद्यार्थी संदेश ग्रहण करने वाले होते है इसमें पाठ्यक्रम की विषयवस्तु या सहगामी क्रियाएँ संदेश के रूप में होती है ।

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुलश्रेष्ठ ए एस॰ पी॰, 2009, शैक्षिक तकनीकी के मूल आधारए श्री विनोद पुस्तक मंदिरए आगरा ।
2. माथुरए एसण् एसण् , 1996, शैक्षिक तकनीकीए श्री विनोद पुस्तक मंदिरए आगरा ।
3. शर्माए आरण् एण् , 2010, शिक्षा तकनीकीए लायल बुक डिपोए मेरठ ।
4. कपूरए उर्मिला , 1986, शैक्षिक तकनीकीण् साहित्य प्रकाशनए आगरा।
5. सिंह आर॰ पी॰;2010, शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठनए अग्रवाल पब्लिकेशन्सए आगरा ।
6. शर्मा प्रतिष्ठा , 2009, शैक्षिक प्रबंध एवं विद्यालय संगठनए साहित्य प्रकाशनए आगरा
7. Agrawal, J. C. (2010). Educational Technology & Management. Agra: Shree Vinod Pustak Mandir Acharya Book Depot.
8. Sampath, K., Panneerselvam, A. & Santhanam, S. (2007). Introduction to Educational Technology. New Delhi: Sterling Publishers Private Ltd.

9. Mohanty, S.B. (1986). Educational Technology. New Delhi: kalyani Publishers.
10. Mohanty, J. (1992). Educational Technology. New Delhi: Deep & deep Publishers.
11. Kumar, K.L. (1996). Educational Technology. New Delhi: New Age Publishers.
12. Anand, P.S. (1996). Essentials of Teaching and Learning. Rohtak : Unique Publication.
13. Chand, Tara (1990). Educational Technology. New Delhi: Anmol Publishers.
14. Thornburg, H. (1973). School Learning and Instruction. California: Wordsworth Publishing Co. Belmod.

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Brunner, J.S. (1966). Towards a theory of instruction. Massachussets: Harward University Press.
2. Decceco, John P. (1970). The Psychology of Learning and Instructional technology. New Delhi: Prentice Hall Pvt. Ltd.
3. Raths, James & et al. (1971). Studying Teaching. New Jersey: Prentice Hall Inc.
4. Sharma, R.A. (1983). Technology of teaching. Meerut: International Publishing House.
5. Storms, R.D. (1971). Teaching and Learning Process. New Jersey: Prentice Hall Inc.
6. Green Thomas, F. (1971). The activities of teaching. London: Mc Graw Hill Company.

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न.1 सम्प्रेषण से क्या तात्पर्य है।सम्प्रेषण की प्रकृति एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न.2 सम्प्रेषण के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न.3 सम्प्रेषण कितने प्रकार का होता है। उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न.4 सम्प्रेषण की प्रक्रिया के तत्वों को लिखिए एवं शिक्षा में उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई 4 : प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका एवं उसके प्रकार (Role of Communication in effective management and its types)

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 सम्प्रेषण
4.3.1 परिभाषा
4.3.2 सम्प्रेषण के तत्व
4.3.3 सम्प्रेषण के सिद्धांत
4.3.4 प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका
4.3.5 सम्प्रेषण के प्रकार
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.8 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना (Introduction):

प्रबंध की आवधारणा उतनी ही पुरानी है जितना कि मानव सभ्यता का इतिहास। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक से अधिक व्यक्ति मिलकर किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए कार्य करतें हैं। प्रत्येक संगठन में व्यक्ति अनेक तरह की क्रियाओं में लगे रहतें हैं जो कि कार्यात्मक रूप से एक दूसरे से सम्बंधित होते हैं। इन क्रियाओं का आधार विचारों व सूचनाओं का आदान – प्रदान होता है। विचारों व सूचनाओं के इसी लेन – देन को सम्प्रेषण कहतें हैं। सम्प्रेषण के बिना प्रबंध की कल्पना नहीं की जा सकती है। चेस्टर बर्नाड के अनुसार "सम्प्रेषण प्रबंध का एक आधारभूत कार्य ही नहीं बल्कि प्रबंध की समस्या भी है।" वास्तव में प्रबंधक अपने समय का प्रतिशत अंश सम्प्रेषण करने में ही व्यतीत करतें हैं। उनका प्रत्येक दिन आदेशों, निर्देशों, वार्तालाप, प्रतिवेदन, विवेचन, आज्ञा, आदि से भरा रहता है। दूसरें शब्दों में हम यह कह सकतें हैं कि सम्प्रेषण के अभाव में प्रबंधन एक कोरी कल्पना मात्र है। प्रस्तुत अध्याय में सम्प्रेषण के बारे में पढेंगे।

4.2 उद्देश्य (Objectives):

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सम्प्रेषण की परिभाषा एवं अर्थ बता सकेंगे ।
- सम्प्रेषण के तत्व का वर्णन कर सकेंगे।
- सम्प्रेषण के सिद्धांतों का उल्लेख कर सकेंगे।
- प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कर सकेंगे।

4.3 सम्प्रेषण (Communication):

संप्रेषण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच सम्प्रेषण का अंग्रेजी रूपांतरण Communication होता है। Communication शब्द लैटिन के शब्द "Communis" से बना है जिसका अर्थ होता है समरूप (Common)। सम्प्रेषण में प्रेषक सन्देश प्राप्तकर्ता के साथ एक सा अर्थ बोध स्थापित करने का प्रयास करता है। सम्प्रेषण संदेशों के विनिमय की प्रक्रिया है।

4.3.1 परिभाषा (Definition):

न्यूमैन एवं समर: सम्प्रेषण दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच तथ्यों, विचारों, सम्मतियों अथवा भावनाओं का विनिमय है।

मैकफारलैंड: सम्प्रेषण व्यक्तियों के मध्य अर्थपूर्ण अंतर्व्यव्हार की प्रक्रिया है।

कीथ डेविस: सम्प्रेषण प्रक्रिया है जिसमें सन्देश और समझ को एक से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।

थियो हेमैन: सम्प्रेषण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सूचनाएं एवं समझ हस्तांतरित करने की प्रक्रिया है।

लुईस ए एलेन: सम्प्रेषण में वे सभी चीजें शामिल रहतीं हैं जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी बात दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में डालता है। यह अर्थ का पुल है।इसके अंतर्गत कहने, सुनने और समझने की व्यवस्थित एवं निरंतर प्रक्रिया चलती रहती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि सम्प्रेषण एक प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति अपने मतों, विचारों, सम्मतियों, तथा तर्कों आदि का पारस्परिक आदान-प्रदान करतें हैं। यह एक कला है जिसके माध्यम से सूचनाओं का विनिमय होता है । सम्प्रेषण की प्रक्रिया तब तक ही चलती रहती है जब तक आपसी अवरोधों, मतभेदों, संदेहों एवं आपतियों को दूर करके आपसी समझ और सम्मति न स्थापित हो जाये।

4.3.2 सम्प्रेषण के तत्व (Elements of Communication)

सम्प्रेषण में मुख्यतः निम्नलिखित तत्व सम्मिलित रहतें हैं :

स्रोत (Source): यह सूचना का उद्गम स्थल होता है। यहाँ सूचनाएं अपने प्रारंभिक रूप में होतीं हैं।

प्रेषक (Sender): यह सम्प्रेषण का वह महत्वपूर्ण अंग होता है जो सूचना या संवाद देता है। पूर्ण एवं सही सम्प्रेषण के लिए यह आवश्यक है कि संवाद या सन्देश संवाद दाता के मस्तिष्क में सही और स्पष्ट होने चाहिए। यह सूचना को चिन्हों, प्रतीकों व संकेतों के व्यवस्थित प्रारूप में लिपिबद्ध करके भेजता है।

सन्देश (Message): सन्देश सम्प्रेषण की विषय वस्तु का नाम है। संदेश से मतलब उस विचार से है जो संवाददाता द्वारा प्राप्तकर्ता को भेजी जाती है। सन्देश से वही अर्थ स्पष्ट होना चाहिए जो संवाददाता के मस्तिष्क में हैं।

लिपिबद्धकरण (Encoding): सन्देश या सूचना अदृश्य एवं अमूर्त होती है। उसे स्वरुप प्रदान करने हेतु लिपिबद्ध किया जाना आवश्यक है। किसी भी सूचना व सन्देश को लिपिबद्ध करने हेतु प्रतीकों, चिन्हों या शरीर की भाषा (वाणी, हाव-भाव, मुद्रा हाथ आदि) का प्रयोग किया जाता है। लिपिबद्ध कर्ता को कई घटक प्रभावित करतें हैं यथा सम्प्रेषण कौशल, अभिवृतियाँ, अनुभव-ज्ञान, वातावरणीय एवं सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व।

माध्यम(Medium): इससे तात्पर्य उस साधन से है जिसके द्वारा संवाददाता प्राप्तकर्ता को सूचना भेजता है। संवाददाता द्वारा प्राप्तकर्ता को सूचना देने के लिए विभिन्न साधनों का प्रयोग किया जाता है। इसमें मौखिक एवं लिखित दोनों प्रकार की सम्प्रेषण विधियाँ शामिल हैं।

प्राप्तकर्ता (Receiver): यह वह व्यक्ति होता है जिसके पास सूचनाएं भेजी जाती हैं।

कूट खोलना(Decoding): सन्देश प्राप्तकर्ता सूचना/सन्देश प्राप्त करने के बाद उसकी व्याख्या या अनुवाद अपने शब्दों में करता है।

प्रतिक्रिया (Reaction): इससे तात्पर्य संवाददाता द्वारा प्रेषित किये गए सूचना या विचार का प्राप्तकर्ता पर पड़ने वाले प्रभाव से है। सूचना की प्राप्तकर्ता पर क्या प्रतिक्रिया होगी, यह संवाददाता के संवाद भेजते समय आचरण और व्यवहार पर निर्भर करता है। संवाददाता की भाषा एवं व्यवहार में विरोधाभास प्राप्तकर्ता पर प्रतिकूल प्रभाव भी डाल सकता है।

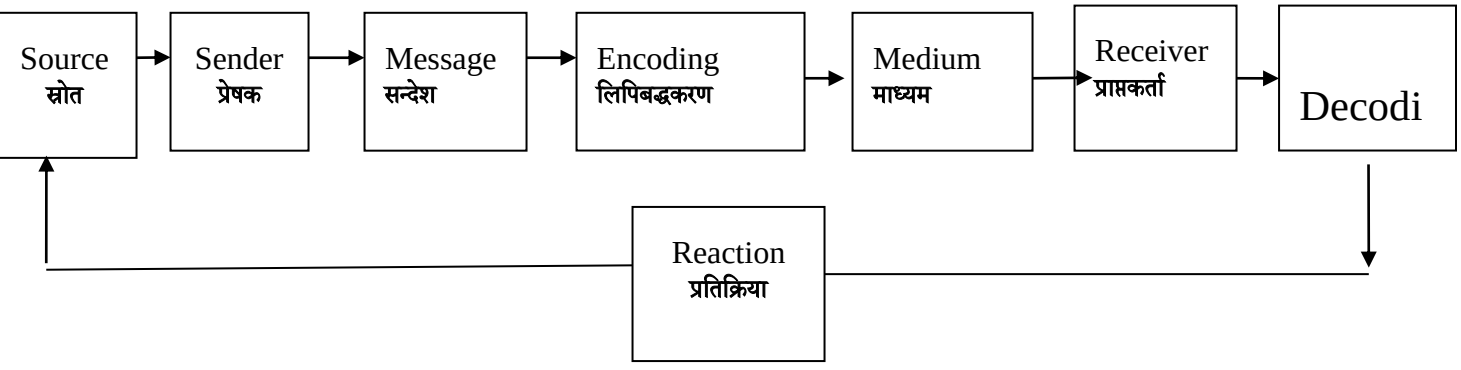

4.3.3 सम्प्रेषण के सिद्धांत (Principles of communication):

I) स्पष्टता (Clarity): सूचना की स्पष्टता भाव और भाषा दोनों दृष्टिकोणों से होनी चाहिये जिससे कि प्राप्तकर्ता सूचना का वही अर्थ लगावे जो कि संवाददाता के मस्तिष्क में है। स्पष्टता बनाये रखने हेतु बहुत अधिक तकनीकी एवं निजी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

II) अनुकूलता (Consistency): किसी संस्था में संवाददाता द्वारा संचारित सूचनाएं संस्था की नीतियों, उद्देश्यों और कार्यक्रमों से मिलती-जुलती होनी चाहिए।

III) पर्याप्तता (Adequacy): सूचना की पर्याप्तता उसे प्राप्त करने वाले व्यक्ति की मानसिक क्षमता पर निर्भर करती है।

IV) समयानुकूलता (Timeliness): किसी सूचना के सम्बन्ध कें एक व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं अलग- अलग समय पर अलग-अलग हुआ करती है। अतः प्रत्येक सूचना के सम्प्रेषण का उपयुक्त समय क्या होगा- यह संस्था विशेष के आकार और स्वभाव के साथ साथ परिस्थितियों, मनोवैज्ञानिक धारणाओं तथा तकनीकी पहलूओं आदि पर निर्भर करता है।

V) प्रसारण (Distribution): सम्प्रेषण के लिए जितना महत्व समय का निर्धारण करना है उतना ही महत्व प्रत्येक सूचना का उचित व्यक्ति के पास पहुंचना है। प्रबब्धक को पात्र, समय और परिस्थितियों के अनुसार ही सूचना प्रसारण का सर्वश्रेष्ठ मार्ग चुनना चाहिये।

VI) सामान्य श्रोत (Common Source): जहाँ तक संभव हो सूचनाएं एक सामान्य श्रोत से प्रेषित की जानी चाहिए।

VII) मध्यस्थों की न्यूनता (Minimum levels): सम्प्रेषण के इस सिद्धांत के अनुसार यह आवश्यक है कि सम्प्रेषण प्रक्रिया में मध्यस्थों की संख्या न्यूनतम हो। मध्यस्थों की संख्या कम होने से जहाँ एक ओर सूचना प्राप्तकर्ता तक जल्दी पहुंचेगी वहीँ दूसरी ओर सूचनाओं के विकृत होने की संभावना कम होगी।

VIII) प्राप्तकर्ता की स्थिति का ज्ञान (Knowledge of receivers' position): सूचना भेजते समय प्रेषक को प्राप्तकर्ता की आवश्यकताओं, भावनाओं व सामाजिक रीति-रिवाजों पर भी ध्यान देना चाहिए।

IX) लोचता (Flexibility): यह सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि परिवर्तित दशाओं, तकनीकी परिवर्तनों, व अन्य मांगों के अनुसार सूचना में परिवर्तन किया जाना चाहिए।

X) भावनात्मक अपील (Emotional Appeal): सूचनाओं में भावनात्मक तत्व भी होने चाहिए जिससे की वे प्रभावी बन सकें।

XI) विषय वस्तु का ज्ञान (Knowledge of Subject matter): प्रेषक को विषय वस्तु का ज्ञान सही, पूर्ण व विस्तृत होना चाहिए।

XII) प्रतिपुष्टि (Feedback): सूचना प्राप्त करने के बाद प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रियाओं, भावनाओं, सुझावों को प्रेषक तक पहुँचाने का प्रावधान भी होना चाहिए।

XIII) उपयुक्त वातावरण (Suitable Environment): उपयुक्त वातावरण तैयार करने के बाद ही सूचना भेजनी चाहिए।

XIV) द्वि मार्गी प्रेषण (Two-way Communication): सम्प्रेषण एक मार्गी नहीं होना चाहिए।

XV) अच्छा श्रवण (Good Listening): सूचना भेजने वाला और सूचना को पाने वाला, दोनों हीं अच्छे श्रवणकर्ता होने चाहिए।

4.3.4 प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण की भूमिका (Role of Communication in Effective management):

20 वीं शताब्दी की प्रमुख घटना आधुनिक समाज का उदय है। जैसे-जैसे हमारी आवश्यकताओं में वृद्धि होती गयी है, वैसे-वैसे मानवीय संगठन व उपक्रम आस्तित्व में आने लगे हैं। इन संस्थओं/उपक्रमों में मानव शक्ति, तकनीकी, मुद्रा, भौतिक संसाधन, विचारों की सहायता से कार्य करने की कला ही प्रबंधन कहलाती है। परन्तु प्रबंधन को प्रभावशाली बनाने के लिए सम्प्रेषण एक आवश्यक तत्व है । प्रबंध में सम्प्रेषण का महत्व निम्नलिखित है:

I) नियोजन एवं सम्प्रेषण (Planning & Communication): नियोजन प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसमें प्रबंधक निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करता है। नियोजन में आपसी विचार विमर्श करके निर्णय लिया जाता है। सम्प्रेषण के माध्यम से क्या करना है, कब करना है और कैसे करना है आदि बातों पर निर्णय लिया जाता है । सम्प्रेषण ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से निर्धारित की गयी योजनाओं की जानकारी प्रबंधक अपने अधीनस्थों को देता है और उसे लागू करने का प्रयास करता है। सम्प्रेषण के अभाव में योजनायें सिर्फ सिर्फ कागजों तक ही सीमित रहतीं है।

II) संगठन एवं सम्प्रेषण (Organization & Communication): संगठन विभिन्न कार्यों का एकीकरण करने, कार्यों का वितरण करने तथा सम्बंधित व्यक्तियों को उनके अधिकार व दायित्व सौपने की प्रक्रिया है। किसी संस्था में सम्प्रेषण तन्त्र जितना प्रबल एवं त्रुटि रहित होगा, संगठन की प्रक्रिया को उतना बल मिलता है ।

III) नेतृत्व एवं सम्प्रेषण (Leadership & Communication): नेतृत्व एक गतिशील शक्ति है जिसके द्वारा प्रबंधक निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपने अधीनस्थों को प्रभावित करता है। नेतृत्व की सफलता सम्प्रेषण

पर निर्भर करती है। जब तक प्रबंधक और अधीनस्थों के बीच स्वतंत्र सम्प्रेषण होता रहता है तब तक उन दोनों के बीच विश्वास की भावना प्रबल होती है और निर्देशित मार्ग द्वारा कार्य करने की अवस्थाएं उपस्थित रहतीं हैं। इसके माध्यम से जहाँ एक ओर प्रबंधक अपना प्रभाव अधीनस्थों पर डाल सकता है वहीँ दूसरी ओर वह अधीनस्थों से सुझाव, विचार, मत आदि प्राप्त करके निर्देशों को अधिक कारगर बनाता है।

IIIIIIV) **समन्वय एवं सम्प्रेषण (Coordination & Communication):** समन्वय से आशय सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सभी व्यक्तियों के कार्यों में ताल मेल रखने से होता है। किन्तु समन्वय की सफलता के लिए सम्प्रेषण एक अनिवार्यता है। मेरी कुशींग नील्स के शब्दों "समन्वय के लिए सम्प्रेषण की श्रेष्ठता बहुत आवश्यक है। संदेशों का आदान-प्रदान उपर-नीचे तथा इधर-उधर सभी दिशाओं में होता है अर्थात् विभिन्न स्तर के अधिकारियों या कर्मचारियों में सूचनाओं का आदान प्रदान चलता रहता है।"

V) **नियंत्रण एवं सम्प्रेषण (Control & Communication):** नियंत्रण का तात्पर्य इस बात का मूल्याङ्कन करने से है कि संस्था के समस्त कार्य स्वीकृत की गयी योजनाओं, दिए गए निर्देशों या निर्धारित नियमों के अनुसार हो रहे हैं या नहीं। इसका उद्देश्य कार्य की दुर्बलताओं व त्रुटियों को प्रकाश में लाना है जिससे यथा समय उनमें सुधार लाया जा सके और भविष्य में उसकी पुनरावृति रोकी जा सके। सम्प्रेषण के बिना नियंत्रण की कल्पना नहीं की जा सकती है।

VI) **मनोबल का निर्माण (High morale):** कर्मचारियों का उच्च मनोबल ही संस्था की मूल्यवान संपत्ति होती है। यह कार्य के प्रति स्वेच्छा से सहयोग करने की इच्छा एवं मनोदशा है। यह उत्साह, तत्परता, जोश व योगदान करने की ललक से परिपूर्ण मानसिक दशा है। सम्प्रेषण के माध्यम से कर्मचारीगण और प्रबंधक के मध्य विचारों का निरंतर आदान-प्रदान होता रहता है। यदि किसी कर्मचारी के मन में कोई संदेह या भ्रम उत्पन्न हो जाता है तब प्रबंधक आसानी से उसकी समस्या का समाधान कर लेता है। ऐसे मैत्रीपूर्ण माहौल में सदैव शांति रहती है और संघर्ष कोसों दूर रहतें हैं।

VII) **बाहरी पक्षों से सम्बन्ध (Relationship with external parties):** वर्तमान युग प्रतियोगिताओं व स्पर्धा का दौर है। प्रत्येक संस्था अपने अनेक बाह्य पक्षों यथा जैसे समुदाय, आयोजकों, तकनीकी विशेषज्ञों, सलाहकारों आदि से जुडी रहती है। किसी संस्था को अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए अपने सभी पक्षकारों के साथ संपर्क बनाये रखना पड़ता है। यह कार्य बिना सम्प्रेषण के संभव नहीं है।

VIII) **पूर्वानुमान में सहायक (Helpful in forecasting):** किसी प्रबंधक को भविष्य की चुनौतियों एवं आने वाले मुश्किलों के सम्बन्ध में पूर्वानुमान करने पड़ते हैं ताकि वह अपनी संस्था/ उपक्रम का विकास कर सके। उसे अनेक तरह की सूचनाओं, तथ्यों, मतों, प्रावधानों आदि को एकत्रित करना पड़ता है। इस तरह पूर्वानुमान में सम्प्रेषण का महत्व बढ़ जाता है।

IX) **मानवीय सम्बन्ध स्थापित करना (Establishing Human Relationship):** प्रबंध का विषय मानव है और यह मूलतः मानवों के विकास से सम्बंधित है। अब वो दिन चले गए जब मानव को उत्पादन का साधन मात्र समझा जाता था । किसी संस्था/उपक्रम से जुडी मानव शक्ति की रुचियों, जरूरतों, अभिवृत्तियों,

मनोदशाओं आदि का भी ध्यान रखना प्रबंध का कार्य है। इन कार्यों को सम्पादित करने के लिए सम्प्रेषण आवश्यक हो जाता है। अधीनस्थों से बिना विचार-विमर्श किये उनकी समस्याओं को जाना नहीं जा सकता है। सम्प्रेषण व्यवस्था से प्रबंधक अपनी नीतियों व विचारों को अधीनस्थों तक पहुँचाकर वास्तविक स्थिति से अवगत करातें हैं और अधीनस्थ अपनें सुझाव, शिकायतें, विचार आदि प्रबंधकों तक पहुँचाते रहतें हैं।

X) संदेहों और अज्ञानता का निवारण (Eradication of Doubts and Ignorance): संदेह या भ्रम के कारण अधीनस्थों और प्रबंधकों बीच आपसी सम्बन्ध बिगड़ जातें हैं। नियमों और कार्यपद्धति की अज्ञानता भी अधीनस्थों के सहभागिता को प्रभावित करती है। जहाँ सम्प्रेषण व्यवस्था जितनी दुरुस्त रहेगी अधीनस्थों की कार्य बाधायें उतनी ही कम होंगी।

उपर्युक्त विवेचनाओं यह कहा जा सकता है कि सम्प्रेषण किसी संस्था की जीवनदायिनी शक्ति होती होती है।प्रतिस्पर्धा, विविधता, विशिष्टीकरण नयी तकनीकी के इस दौर में प्रबंधक की चुनौतियाँ बढ़ती जा रही हैं। प्रबंधन को सभी कार्यों के लिए सम्प्रेषण की सहायता लेनी पड़ती है। सम्प्रेषण एक प्रणाली होती है जो कि सभी प्रकार के प्रबंधकीय कार्यों को गति प्रदान करती है।

4.3.5 सम्प्रेषण के प्रकार (Types of Communication)

सम्प्रेषण के अनेक प्रकार होतें हैं। उनका वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर किया गया है।

- माध्यम के आधार पर प्रकार (Types on the basis of media)
- संबंधों के आधार पर प्रकार (Types on the basis of relations)
- संदेशों के प्रवाह के आधार पर (Types on the basis of flow of communication)

निम्नलिखित चित्र की सहायता से सम्प्रेषण के विविध रूपों का अनुमान लगाया जा सकता है।

सम्प्रेषण के प्रकार

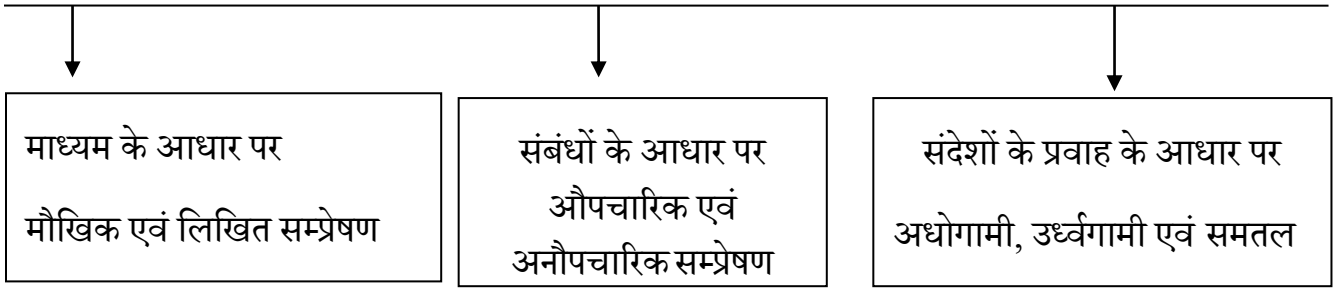

माध्यम के आधार पर

I) मौखिक सम्प्रेषण (Verbal Communication): मौखिक सम्प्रेषण का आशय है कि प्रेषक द्वारा किसी सूचना/ संवाद को मुख से उच्चारण करके प्राप्त करता को प्रेषित करने से है। इस तरह से सम्प्रेषण में प्रेषक और प्राप्तकर्ता आमने-सामने होते हैं। ऐसे सम्प्रेषण में अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है जैसे प्रशिक्षण कार्यक्रम, साक्षात्कार, संयुक्त विचार-विमर्श, सभाएं, सम्मलेन, आदि।

गुण:

- यह सम्प्रेषण का सबसे प्रभावशाली तरीका है।
- इसमें समय, धन और श्रम की बचत होती है।
- सन्देश/ सूचना को शीघ्र ही प्राप्तकर्ता तक पहुँचाया जा सकता है।
- यह आसानी से समझ में आ जाता है। यदि दुर्भाग्य से भ्रम पैदा हो भी जाये तो उसका तत्काल निवारण भी किया जा सकता है।
- यह लिखित सम्प्रेषण की तुलना में लोचनीय होता है। इसमें प्रेषित सन्देश में आसानी से परिवर्तन एवं संशोधन किया जा सकता है।
- यह पारस्परिक सद्भाव व सद्विश्वास में वृद्धि होती है।
- इससे व्यक्तियों में वाक्चातुर्य, व्यवहारिक कुशलता आदि का विकास होता है जिससे उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।

दोष:

- मौखिक सम्प्रेषण के लिए दोनों पक्षों का उपस्थित होना आवश्यक है। यदि किसी समय इन दोनों में से कोई भी अनुपस्थित हो तो सम्प्रेषण संभव नहीं होता है।
- मौखिक सम्प्रेषण लम्बी सूचनाओं के लिए अनुपयुक्त होता है क्योंकि प्राप्तकर्ता द्वारा सूचना को याद रख पाना असंभव होता है।
- इसमें प्रेषित की गयी सूचनाओं का कोई लिखित साक्ष्य नहीं होता है।
- जो सूचनाये किसी संस्था में भावी सन्दर्भ के लिए आवश्यक होतीं हैं, वे मौखिक रूप में अनुपयुक्त होतीं हैं।
- यह अन्य साधनों की तुलना में खर्चीला भी है। सूचनाओं का प्रेषण टेलीफ़ोन से करने पर काफी व्यय हो जाता है जबकि यही सन्देश डाक द्वारा भेजा जाये तो कम खर्च होता है।
- इसमें प्रेषक को सोचने का अधिक समय नहीं मिलता है जिससे कि सूचनाओं में त्रुटि की संभावना बढ़ जाती है।

II) लिखित सम्प्रेषण (Written Communication): लिखित सम्प्रेषण से आशय उन सूचनाओं से है जो लिख कर भेजी जाती हों। बुलेटिन, हैण्ड बुक, मैगजीन, समाचार पत्र, संगठन पुस्तिकायें, संगठन अनुसूचियाँ, नीति पुस्तिकायें, कार्य विधि पुस्तिकायें आदि इसके उदाहरण हैं।

गुण:

- लिखित प्रेषण की देशा में दोनों पक्षों की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है।
- विस्तृत एवं जटिल सूचनाओं के प्रेषण के लिए यह उपयुक्त है।
- यह साधन कम खर्चीला है क्योंकि डाक द्वारा सन्देश भेजना दूरभाष पर बात करने की अपेक्षा सस्ता होता है।
- सूचनाएं लिखित होने के कारण प्रमाण पत्र का कार्य करतीं है और उनका उपयोग भविष्य सन्दर्भ के लिए किया जा सकता है।
- जब दो पक्षों के बीच अच्छे संबंधों का अभाव हो या परस्पर अविश्वास हो तब लिखित सम्प्रेषण ही एक मात्र साधन रह जाता है।
- गश्ती पत्रों (Circular Letters) के द्वारा अलग- अलग स्थानों पर रहने वाले लोगों को एक ही सूचना भेजी जा सकती है।

दोष:

- प्रत्येक सूचना चाहे छोटी हो या बड़ी, उसे लिखकर भेजने में स्वभावतः बहुत समय लगता है।
- प्रत्येक छोटी सूचना को हमेशा लिखकर भेजना संभव नहीं हो पाता है। फिर यदि लिखित सूचना में कोई बात गलती से छूट जाये तो उसे पुनः लिख कर भेजना संभव नहीं हो पाता है।
- अशिक्षित लोगों के लिए सम्प्रेषण का तरीका कारगर नहीं है।
- इसमें प्रत्येक सूचना को लिखने में समय, धन व श्रम का अपव्यय होता है।
- प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य संपर्क का अभाव होने के कारण सूचना के सम्बन्ध में प्रेषक प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया को जान नहीं पाता है।
- लिखित सूचनाएं अगर किसी अन्य के हाथ में पड़ जाये तो उनकी गोपनीयता चली जाती है।
- लिखित सम्प्रेषण का एक दोष यह भी है कि इससे लालफीताशाही को बढ़ावा मिलता है। जो सूचना लिखकर देनी होती है उसके लिए अनेक औपचारिकताओं का पालन करना पड़ता है। जैसे पहले ड्राफ्ट तैयार करना, अधिकारी से उसे स्वीकृत कराना, टाइपिस्ट से टाइप करवाना तथा डाक द्वारा उसे भेजने की व्यवस्था करना।

संबंधों के आधार पर

I) औपचारिक सम्प्रेषण (Formal Communication): जब प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य औपचारिक सम्बन्ध हों तब उनके मध्य सूचनाओं का आदान-प्रदान औपचारिक संप्रेषण कहलाता है। इस सम्प्रेषण का मार्ग संगठन के ढांचे में निर्धारित प्रक्रियाओं के अनुसार होता है। यह विशेष पद या स्थिति में रह कर किया गया सम्प्रेषण है। यह व्यक्तियों के बीच न होकर पदों के बीच होने वाला सम्प्रेषण होता है। कौन किससे आदेश और निर्देश प्राप्त करेगा, किस व्यक्ति को समस्या समाधान के लिए किसके पास जाना है आदि का निर्धारण पहले से ही होता है।

गुण:

- सूचनाओं का आदान-प्रदान पूर्व-निर्धारित मार्गों द्वारा होता है।
- सूचनाओं का स्वरुप व सीमायें पूर्व निर्धारित होने के कारण विकृति की संभावना कम हो जाती है।
- इससे विभिन्न पदों के बीच समन्वय आसान हो जाता है।
- सूचनाओं में क्रमबद्धता और निरंतरता बनी रहती है।
- सूचनाओं के लिए उत्तरदायित्वों का निर्धारण सुगम हो जाता है।

दोष

- पूर्व निर्धारित मार्ग होने की वजह से सूचनाओं के सामान्य प्रवाह में बाधा उपस्थित होती है।
- इससे कार्य में देरी हो सकती है।
- विभिन्न स्तरों पर सूचनाओं के विकृत होने की संभावना बढ़ जाती है।
- प्रेषक और प्राप्तकर्ता के बीच स्थिति सम्बन्धी अवरोध (Status Barrier) से सूचनाओं का अर्थ प्रभावित होने की संभावना रहती है।

II) अनौपचारिक सम्प्रेषण (Informal Communication): जब प्रेषक और प्राप्तकर्ता के मध्य अनौपचारिक सम्बन्ध होतें हैं तब उनके मध्य सूचनाओं के आदान-प्रदान को अनौपचारिक सम्प्रेषण कहतें हैं। इसमें मार्ग निर्धारित नहीं होतें हैं बल्कि स्वतः बनतें और परिवर्तित होतें हैं। इस प्रकार के सम्प्रेषण को जनप्रवाद या ग्रेपवाइन (Grapevine) भी कहतें हैं। सामान्यतः जनप्रवाद द्वारा कही सुनी बातों, सुनी-सुनायी सूचनाओं, आपसी चर्चाओं, अनुमाओं, तोड़े-मरोड़े गए तथ्यों, तीखी-चटपटी खबरों, अर्धसत्यों, मिथ्या प्रचारों, गुत्थियों आदि का प्रसारण होता है।

अनौपचारिक सम्प्रेषण के मार्गों को निम्न चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. एकल लड़ (Single Strand)
2. गपशप (Gossip)

3. गुच्छा (Cluster)
4. संभाव्यता (Probability)

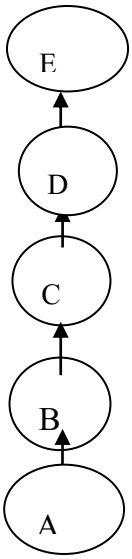

चित्र 1 एकल लड़ (Single Strand)

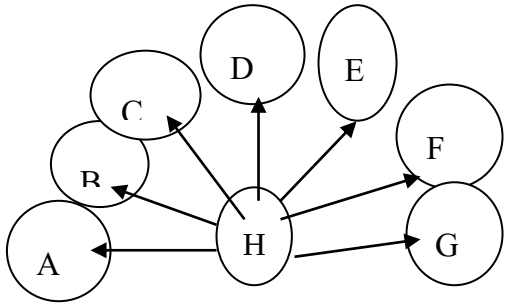

चित्र 2 गपशप (Gossip)

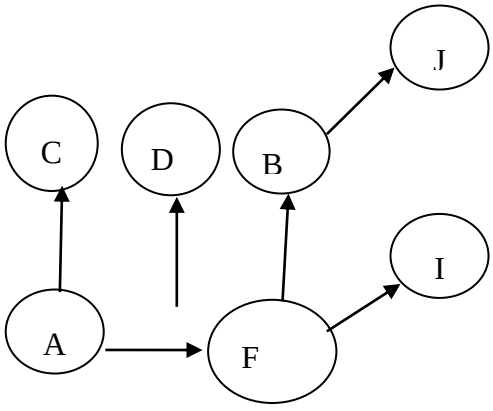

चित्र 3 गुच्छा (Cluster)

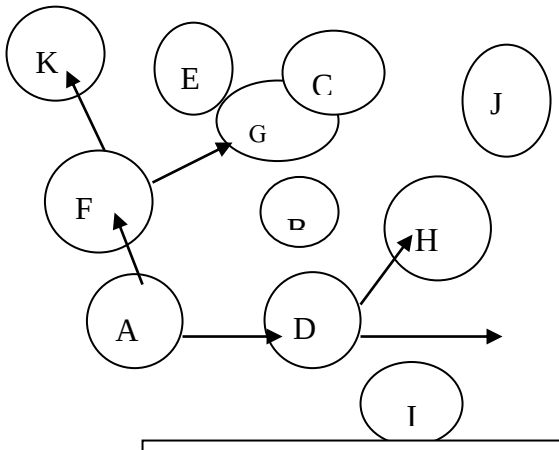

चित्र 4 संभाव्यता (Probability)

चित्र संख्या 1 के एकल लड़ में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को सूचनाओं का आदान-प्रदान करतें है। अतः इसे अनौपचारिक सम्प्रेषण मार्ग की एक लड़ी के रूप में संबोधित करतें हैं।

चित्र संख्या 2 के गपशप में एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को सूचनाएं देता है अर्थात् H व्यक्ति A, B, C, D, E, F, G आदि को गैर चयनित आधार पर सूचनाएं देता है।

चित्र संख्या 3 के गुच्छा में एक व्यक्ति अन्य उसी व्यक्ति के साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है जिसमें उसका विश्वास होता है। A, C, D एवं F के साथ सम्प्रेषण करता है। F अपने विश्वास के व्यक्तियों अर्थात् B एवं I के साथ तथा B अपने विश्वास पात्र J के साथ सम्प्रेषण करता है।

चित्र संख्या 4 के संभाव्यता (Probability) में व्यक्ति संभाव्यता के सिद्धांत के आधार पर यदा-कदा ही एक दूसरे को सूचनायें प्रदान करता है। चित्र 4 के अनुसार A, D एवं F को ही सूचनाएं प्रदान करता है और B, C और E को छोड़ देता है। इसी प्रकार F भी G, D एवं H के साथ ही सम्प्रेषण करता है और I एवं J के साथ नहीं।

गुण:

- इसमें सूचनाएं स्वतंत्रतापूर्वक भेजी जातीं हैं। इसमें पद और स्थिति बाधक नहीं होती है।
- औपचारिक संबंधों की आवश्यकता नहीं होती है।
- तत्काल सूचनाएं प्रेषित होने के कारण समय व्यर्थ नहीं होता है।
- यह प्रबंधकीय निर्णयों और कार्यों में सहायक होता है।
- यह प्रबंधकीय बाधाओं को दूर करने में सक्षम होता है।
- यह विचारों की स्वंत्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है।

दोष:

- इसमें सम्प्रेषण का श्रोत ढूँढना कठिन होता है। अतः उत्तरदायित्वों का निर्धारण कठिन होता है।
- इसमें विश्वसनीयता की सीमा निर्धारित करना कठिन होता है।
- ये सन्देश अर्धसत्य या विकृत तथ्यों के रूप में हो सकतें हैं।
- इन पर नियंत्रण रखना और इनके आधार पर निर्णय लेना कठिन होता है।
- ये प्रबंधकों के लिए भ्रम और कठिनाई उत्पन्न करके प्रबंधकीय कार्य कुशलता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं।

संदेशों के प्रवाह के आधार पर :

I) अधोगामी सम्प्रेषण (Downward Communication): जब सूचनाओं का प्रवाह उपर से नीचे की उपर की ओर होता है अर्थात् प्रबंधक से अधीनस्थों की ओर होता है तब अधोगामी सम्प्रेषण कहा जाता है। इसमें प्रायः निम्नलिखित प्रकार की सूचनायें होतीं है:

- कार्य के सम्बन्ध में आदेश, निर्देश व दायित्व
- नीतियों, नियमों, कार्य पद्धतियों, लक्ष्यों आदि के बारे में सूचनाएं
- कार्य निष्पादन के बारे में प्रतिपुष्टि
- संस्था के भावी कार्यक्रमों के बारे में सूचनायें
- प्रशंसा, आलोचनाएँ
- अधीनस्थों से कार्य सम्बन्धी प्रश्न

II) उर्ध्वगामी सम्प्रेषण (Upward Communication): जब सूचनाओं का प्रवाह उच्च पदों से निम्न पदों की ओर होता है अर्थात् जब सूचनायें अधीनस्थों से प्रबंधक की ओर जातीं हैं तब उर्ध्वगामी सम्प्रेषण होता है। इसमें प्रायः निम्न प्रकार की सूचनायें होतीं है:

- अधीनस्थों के कार्य प्रतिवेदन
- अधीनस्थों की कार्य समस्यायें
- आदेशों-निर्देशों पर आपत्तियाँ
- अधीनस्थों के विचार, मत एवं सुझाव
- अधीनस्थों की व्यक्तिगत समस्यायें
- कार्य सम्बन्धी कठिनाईयाँ व शिकायतें
- अधीनस्थों की प्रतिक्रियायें

III) समतल सम्प्रेषण (Horizontal Communication): जब सामान स्तर के अधिकारियों व कर्मचारियों के सूचनाओं का आदान प्रदान होता है तो इसे समतल सम्प्रेषण कहतें हैं। किसी में परियोजना दल, कार्य बल, आव्यूह या समितिओं का गठन इस प्रकार के सम्प्रेषण के रूप होतें हैं। यह संप्रेषण समन्वयात्मक प्रकृति का होता है तथा कार्यों के विशिष्टीकरण के कारण इनकी आवश्यकता होती है। यह सम्प्रेषण लिखित या मौखिक दोनों ही प्रकारों का हो सकता है। इसमें निम्न प्रकार का सम्प्रेषण शामिल रहता है:

- एक की कार्य समूह या विभाग में सामान स्तर के कर्मचारियों के बीच सम्प्रेषण।

- सामान संस्थागत स्तर पर कार्यशील विभागों के मध्य अथवा उसके अंतर्गत समतलीय सम्प्रेषण।

अभ्यास प्रश्न 1 ((दिये गये कथनों में से सत्य/असत्य को बताईये।)

1) सम्प्रेषण में सिर्फ संवेगों का आदान-प्रदान होता है।

2) मौखिक सम्प्रेषण में टेलीफ़ोन का उपयोग किया जाता है।

3) लिखित सम्प्रेषण में तथ्यों को भावी सन्दर्भ के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

4) अनौपचारिक सम्प्रेषण को ग्रेपवाइन कहा जाता है।

5) अधोगामी सम्प्रेषण में प्रबंधक अपने अधीनस्थों से आदेश प्राप्त करतें हैं।

6) उर्ध्वगामी सम्प्रेषण में अधीनस्थ अपने प्रबंधक को सूचनाएं भेजतें हैं।

7) समतल सम्प्रेषण दो सामान स्तरों के बीच होता है।

4.4 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत हमने यह जाना कि सम्प्रेषण समस्त प्रबंधकीय कार्यों की आधारशिला है। यह वह प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति अपने सूचनाओं, विचारों, भावनाओं, सम्मतियों आदि का पारस्परिक आदान-प्रदान करतें हैं। प्रबंधन के सभी कार्यों यथा नियोजन, संगठन, नेतृत्व, समन्वय, नियंत्रण आदि में सम्प्रेषण की भूमिका होती है। इसके अतिरिक्त मनोबल का निर्माण, बाहरी पक्षों से सम्बन्ध स्थापित करना, पूर्वानुमान करना, मानवीय सम्बन्ध स्थापित करना: ये सभी कार्य सम्प्रेषण के आधार पर ही किये जातें हैं। सम्प्रेषण के कई रूप होतें हैं। माध्यम के आधार पर : मौखिक और लीकित सम्प्रेषण, संबंधों के आधार पर: औपचारिक और अनौपचारिक सम्प्रेषण, संदेशों के प्रवाह के आधार पर: अधोगामी, उर्ध्वगामी और समतल सम्प्रेषण।

4.5 शब्दवाली

1. **सम्प्रेषण:** दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच तथ्यों, विचारों, अनुमानों या संवेगों के आदान-प्रदान ।
2. **मौखिक सम्प्रेषण:** सूचना/ संवाद का मुख से उच्चारण करके भेजना।
3. **लिखित सम्प्रेषण:** सूचना/ संवाद को लिखित रूप में भेजना।
4. **औपचारिक सम्प्रेषण:** प्रेषक एवं प्राप्तकर्ता के औपचारिक संबंधों पर आधारित सम्प्रेषण।
5. **अनौपचारिक सम्प्रेषण:** प्रेषक एवं प्राप्तकर्ता के अनौपचारिक संबंधों पर आधारित सम्प्रेषण।

6. **अधोगामी सम्प्रेषण:** ऊपर से नीचे की ओर सूचनाओं का प्रवाह।
7. **उर्ध्वगामी सम्प्रेषण:** नीचे से ऊपर की और सूचनाओं का प्रवाह।
8. **समतल सम्प्रेषण:** समान स्तर पर सूचनाओं का प्रवाह।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1) असत्य 2) सत्य 3) सत्य 4) सत्य 5) असत्य 6) सत्य 7) सत्य

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- Prasad, L.M. *Organisational Behaviour.* S Chand & Sons, New Delhi, 2005.
- Sampat, K. *Introduction to Educational Technology.* Sterling Publishers Private Limited, NewDelhi, 2001
- Saxena, S.C. *Prabandh ke Siddhant.* Sahitya Bhawan, Agra, 2009.
- Sharma, G.D & G.C. Khurana, *Prabandh Ke Siddhant.* Ramesh Book Depot, Jaipur, 2007
- Sharma, R.A. *Technological Foundations of Education.* Surya Publication, Merrut, 2003.
- Sudha, G.S. *Principles & Practice of Management.* Malik & Company, Jaipur, 2011.
- Tyagi, A. *Organizational Behaviour.* Excel Books, NewDelhi, 2001.

4.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. सम्प्रेषण की परिभाषा दीजिये। इसके मुख्य तत्वों पर भी प्रकाश डालिए।
2. सम्प्रेषण के सिद्दांत कौन-कौन से हैं ? उल्लेख कीजिये।
3. प्रभावशाली प्रबंधन में सम्प्रेषण के महत्व की समीक्षा कीजिये।
4. सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों को समझाइये।
5. सम्प्रेषण के विभिन्न प्रकारों के गुण एवं दोषों का उल्लेख करें।

इकाई 5 : सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ तथा शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को कम करने के उपाय

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण
5.4 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ
5.5 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपाय
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.09 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

शैक्षिक प्रशासन शैक्षिक संस्थाओं का प्रबंध जिसमे अध्यापन तथा अधिगम को ध्यान में रखा जाता है। चूकिं यह व्यवहारिक क्षेत्र है इसमे अन्य क्षेत्रों के प्रबंध जैसे सार्वजनिक प्रशासन, चिकित्सा प्रशासन, वाणिज्य प्रशासन आदि के कुछ समान तत्व पाये जाते हैं । शैक्षिक प्रशासन के विषयक्षेत्र के अंतर्गत विद्यार्थी, कर्मचारी, वित्त, पाठ्यक्रम, भौतिक सुविधाएं तथा जनसंबंध आते है । समाज द्वारा निर्धारित शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये अध्ययन एवं अध्यापन का वातावरण तैयार करने में शैक्षिक प्रशासक को विभिन्न व्यक्तियों, वस्तुओं तथा संसाधनों के बीच समन्वय, व्यवस्थापन, तथा एकीकरण आदि कार्य करने होते हैं । इन समस्त कार्यों की सफलता प्रभावशाली सम्प्रेषण पर निर्भर करती है । शैक्षिक प्रशासन के अंतर्गत भी सम्प्रेषण की सामान्य बाधाएँ प्रभाव डालती हैं । प्रस्तुत इकाई में शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपाय पर चर्चा की जाएगी ।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप:

- सम्प्रेषण में आने वाली विभिन्न प्रकार की बाधाओं को बता सकेंगे।
- शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण को स्पष्ट कर सकेंगे।

- शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को बता सकेंगे।
- शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को कम करने के उपाय को बता सकेंगे।
- सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं का वर्गीकरण कर सकेंगे।

5.3 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण

सर्वप्रथम हम यह समझने का प्रयास करेंगे की शैक्षिक प्रशासन क्या है ? स्टीफन जे नेजविक के अनुसार "शैक्षिक प्रशासन संगठनात्मक कार्यों का एक ऐसा विशिष्ट समूह है जिसका मुख्य उद्देश्य युक्तिसंगत शैक्षिक सेवाओं का उचित एवं प्रभावशाली सम्पादन एवं नियोजन, निर्णयन एवं नेतृत्व संबंधी व्यवहार के द्वारा वैधानिक नीतियों का कार्यान्वयन करना है तथा जो संस्था को पूर्वनिरधारित उद्श्योन पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए बाध्य करता है, जो संसाधनो का अनुकूलन, आवंटन एवं बुद्धिमतापूर्ण देखभाल करने का प्रावधान करता है ताकि उनका अधिकतम उत्पादक प्रयोग हो सके, जो समनूगत सामाजिक तंत्र एवं वांछित संगठनात्मक परिवेश उत्पन्न करने के लिए व्यवसायिक एवं अन्य कार्मिक वर्ग का समन्वय करता है तथा विद्यार्थियों एवं समाज की भविष्य में उत्पन्न होने वाली आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए आवश्यक परिवर्तनों के निश्चयीकरण के लिए सुविधा प्रदान करता है।"

रसैल टी ग्रेग ने प्रशासन को ऐसी प्रक्रिया माना है जिसके सात कार्य हैं- विनिश्चयीकरण, नियोजन, व्यवस्थापन, सम्प्रेषण, प्रभावीकरण(Influencing), समन्वयन एवं मूल्यीकरण (Evaluating)। ये सात कार्य प्रशासनिक प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों के रूप में लिए जाने चाहिए परंतु साथ में यह भी याद रखना आवश्यक है कि ये एकाँकी क्रियाएँ नहीं हैं। वे परस्पर व्याप्त रहते हैं एवं सदैव संयुक्त रूप से परिणाम देते हैं।

आइए अब हम विभिन्न कार्यों को अलग से समझने का प्रयास करें-

उद्देश्यीकरण (Purposing)- शैक्षिक प्रशासन एक सेवा कार्य है अतः प्रत्येक प्रशासनिक क्रिया शिक्षा के मुख्य एवं महान उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में होनी चाहिए। ये लक्ष्य समाज द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा के उद्देश्यों को भिन्न रूप में देखता है लेकिन प्रशासन का कार्य उनको सभी के लिए समान बनाना है। शैक्षिक प्रक्रिया तभी सफल हो सकती है जबकि क्रिया में संलग्न सभी व्यक्ति इन उद्देश्यों के साथ अपना आत्मिकरण कर लें। सम्प्रेषण आत्मीकरण कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

नियोजन(Planning)-

उद्देश्यों को कार्यरूप में परिवर्तित करने के लिए नियोजन की आवश्यकता होती है। नियोजन अनेक विकल्पों में से एक अच्छी कार्य-प्रणाली का चुनाव करना है। नियोजन की उपयोगिता इसलिए है क्योंकि यह इस बात का स्पष्टीकरण करता है कि क्या किया जाना है? अच्छे प्रशासक अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर योजना बनाते हैं क्योंकि योजना में उनकी सहभागिता उनको तादात्म्य स्थापित करने एवं सफल कार्य की ओर अग्रसर करती

है। एक अच्छा प्रशासक बिना सामूहिक निर्णयों एवं कार्यकलापों को नियंत्रित किए सामूहिक नियोजन को प्रेरित करता है। सहयोगियों के साथ मिलकर योजना बनाने के लिए सम्प्रेषण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

व्यवस्थापन(Organizing)-

व्यवस्थापन में तंत्र की संरचना एवं प्रक्रिया दोनों शामिल हैं । संरचना के रूप में यह सम्बन्धों का एक स्वरूप है। व्यवस्थापन से तात्पर्य व्यक्तियों, स्थानों एवं वस्तुओं को इस प्रकार से व्यवस्थित करना तथा उनको कर्तव्य एवं दायित्व सौंपना ताकि स्वतंत्र रूप से कार्य किया जा सके। व्यवस्थापन के अंतर्गत ही व्यक्तियों को प्रयोग में आने वाले साधनों एवं संसाधनों से परिचित कराया जाता है। व्यवस्थापन का कार्य व्यक्तियों के मध्य एवं कार्यों के मध्य सम्बन्धों को दिशा प्रदान करना एवं नियंत्रित करना है। उपरोक्त कार्यों का सम्पादन सम्प्रेषण प्रक्रिया के बिना नहीं हो सकता है।

परिचालन(Operating)-

योजनाओं को व्यावहारिक एवं कार्य रूप में परिणत करना ही परिचालन है। इस महत्वपूर्ण कार्य को संपादित करने में प्रशासन को अन्य कार्यों के साथ-साथ कुछ कार्य जैसे- उत्तरदायित्व-निदेशन, समन्वयन एवं नियंत्रण करने होते हैं।

(अ) निदेशन(Direction)-निदेशन परिचालन का ही एक अंग है। यह कार्य के प्रारम्भ के साथ ही प्रारम्भ होता है। यह बताता है कि क्या किया जाना है। निदेशन केवल मार्गदर्शन नहीं है यदि कार्य अपूर्ण होता है तो कार्य को पूरा करने के विवश करना भी है। अच्छे परिणामों के लिए आवश्यक है कि प्रशासक अपने सहकर्मियों एवं अधीनस्थ कर्मचारियों की विशेषताओं का सम्मान करे तथा उनकी गरिमा को ध्यान में रखकर आदेश प्रदान करे। निदेशन एक प्रकार से सम्प्रेषण ही है जिसमें प्रशासक अपने विचार संबन्धित व्यक्तियों तक पहुंचता है।

(ब)समन्वयन(coordination)-

समन्वयन से तात्पर्य सभी वस्तुओं, क्रियाओं एवं गतिविधियों को जोड़ कर रखने वाली प्रक्रिया है। इनको इस प्रकार जोड़ने से कार्य अधिक प्रभावशाली तरीके से होता है। समन्वय प्रशासन के सभी अंगों एवं सभी क्षेत्रों जैसे- नियोजन, व्यवस्थापन में है। समन्वय कार्मिक वर्ग, विद्यार्थियों, अभिभावक एवं पाठ्यक्रम में विभिन्न साधनों जैसे- नियम, परिनियम तथा प्रथा के द्वारा किया जाता है। समन्वयन का प्रयोग प्रारम्भ में गतिरोध को रोकने के लिए एवं प्रक्रिया के दौरान विरोधों को दूर करने के लिए किया जाता है। उपरोक्त बातों से आप आसानी से समझ सकते हैं कि सम्प्रेषण की समन्वयन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है।

(स) नियंत्रण(Control)-

नियंत्रण कर्मचारियों को उनके कार्य के प्रति उत्तरदायी बनाए रखने के लिये सत्ता का प्रयोग है । नियंत्रण किसी क्रिया को दिशा प्रदान करता है, उसका निदेशन करती है एवं उसका मूल्यांकन भी करती है। नियंत्रण शैक्षिक प्रक्रिया के सभी क्षेत्रों जैसे उद्देश्य, अध्यापक, विद्यार्थी, अनुदेशन, सामग्री, वित्त में आवश्यक

होता है। नियंत्रण परिचालन का अभिन्न अंग है। नियंत्रण में सत्ता एवं युक्तियों दोनों का प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक प्रक्रिया से जुड़े सभी व्यक्तियों पर वांछनीय नियंत्रण बिना सम्प्रेषण के संभव नहीं है। सम्प्रेषण प्रक्रिया द्वारा ही इन व्यक्तियों तक शैक्षिक प्रशासको के निर्देश, विचार पहुचते है।

मूल्यांकन (Evaluation)

प्रक्रिया के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति को प्रोत्साहित करने के लिये मूल्यांकन किया जाता है। प्रशासनिक प्रक्रिया के कमियों को ढूँढना तथा प्रक्रिया में परिवर्तन कर इन कमियों को दूर करना है । अच्छे प्रशासक को ये चाहिए की ऐसा वातावरण तैयार करे जिसमे सभी कर्मचारी स्वपरिक्षण एवं स्वमूल्यांकन के लिये प्रोत्साहित हो सके तथा संस्था के विकास में अपने व्यक्तिगत योगदान की गुणवत्ता एवं मात्रा का मूल्यांकन प्रशासक को मूल्यांकन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए की मूल्यांकन का कर्मचारियों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, मूल्यांकन व्यक्ति एवं समूह की उन्नति के लिये हो तथा उनको मनोवैज्ञानिक सुरक्षा मिल सके। मूल्यांकन हेतु विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित की जाती है जो कि व्यक्ति या समूह के कार्यों की उपलब्धि/ परिणाम के बारे में होती है । उन परिणामों को सर्वाधिक वांछनीय कसौटी से तुलना करके उद्देश्यों की प्राप्ति में संस्था की सहायता करना चाहिए। मूल्यांकन के उपरोक्त सभी कार्य सम्प्रेषण के बिना असंभव है।

5.4 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ:

सम्प्रेषण प्रक्रिया में कभी-कभी बाधाएँ आ जाने से सम्प्रेषण प्रक्रिया प्रभावित हो जाती है जिसके फलस्वरूप प्रेषित संदेश या तो गलत हो जाता है या अपूर्ण रूप से ग्रहण किया जाता है। सम्प्रेषण में आने वाली बाधाएँ निम्न प्रकार की होती है- (अ) भौतिक बाधाएँ (ब) भाषा की बाधाएँ (स) मनोवैज्ञानिक बाधाएँ (द) पृष्ठभूमि की बाधाएँ इसके अतिरिक्त हम सम्प्रेषण की बाधाओं को तीन भागों में विभाजित कर सकते है जो इस प्रकार है।

(1) सम्प्रेषण प्रेषणकर्ता से संबन्धित बाधाएँ।

(2) संदेश प्रसारण संबंधी बाधाएँ।

(3) सम्प्रेषण प्राप्तकर्ता से संबन्धित बाधाएँ।

भौतिक बाधाएँ (Physical Barriers):

सर्वप्रथम हम सम्प्रेषण में आने वाली भौतिक बाधाओं की चर्चा करेंगे। भौतिक बाधाओं के अंतर्गत शोर, अदृश्यता, वातावरण एवं भौतिक असुविधाएँ, बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य, ध्यान का केन्द्रित न हो पाना प्रमुख हैं। शोर या अत्यधिक आवाज के कारण कभी-कभी संदेश सही रूप में सुनाई नहीं दे पाता और गलत तरह से संदेश ग्रहण कर लिया जाता है। जब संदेश के माध्यम के रूप में चित्रों, आकृतियों, संकेतों, मुख-मुद्राओं एवं चक्षु-संपर्क का उपयोग किया जाता है तब कभी-कभी प्रकाश के अभाव या किसी अन्य कारण से इस संदेश को देखकर समझने में परेशानी होती है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया में संदेश भेजने वाले तथा संदेश ग्रहणकर्ता का अच्छा स्वास्थ्य बहुत ही आवश्यक है। यदि संदेश भेजने वाले का स्वास्थ्य खराब होगा तो वह

न तो संदेश अच्छे से तैयार कर पाएगा और न ही उचित तरीके से संदेश भेज पाएगा। यदि संदेश ग्रहण करने वाले का स्वास्थ्य खराब होगा तो वह संदेश उचित तरीके से ग्रहण नहीं कर पाएगा। भौतिक असुविधाएं जैसे संदेश तैयार करने, भेजने एवं ग्रहण करने से संबन्धित वस्तुएं/सामग्री गुणवत्तापूर्ण हो।

भाषा की बाधाएँ (Language Barriers):

भाषा के बाधाओं के अंतर्गत अस्पष्ठ शब्द, अनावश्यक शब्द, शब्दों को गलत तरीके से बोलना, गलत उच्चारण, अस्पष्ठ ग्राफिक तथा संकेत आते है। अस्पष्ठ शब्दों , अनावश्यक शब्दों, शब्दों को गलत तरीके से बोलने, गलत उच्चारण, अस्पष्ट ग्राफिक तथा संकेत के कारण संदेश अपना वांछित प्रभाव डालने में सफल नहीं हो पाता है। संदेश भेजने वाले को संदेश को तैयार करते समय शब्दों का चयन एवं उनका उच्चारण करते समय सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि एक शब्द में कई बार अनेक अर्थ होते हैं। ऐसे शब्दों का इस्तेमाल करते समय उनका संदर्भ स्पष्ट करना चाहिए। संदर्भ स्पष्ट न होने की वजह से संदेश ग्रहण करने में अनेक भ्रांतियाँ संभव हैं।

मनोवैज्ञानिक बाधाएँ (Psychological Barriers):

यदि सन्देश भेजने वाला या सन्देश ग्रहण करने वाला किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित है तो सन्देश की वस्तुनिष्ठता प्रभावित होती है। सन्देश भेजने वाले तथा संदेशग्रहणकर्ता की सम्प्रेषण प्रक्रिया में यदि रुचि नहीं होगी तथा वे ध्यान नहीं देंगे तो सम्प्रेषण प्रक्रिया पूरी नहीं होगी इसके साथ-2 गलत प्रत्यक्षीकरण, इसके अलावा जरूरत से ज्यादा चिन्ताएँ भी सम्प्रेषण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है।

पृष्ठभूमि की बाधाएँ (Background Barriers) :

सन्देश स्रोत एवं सन्देश ग्रहण कर्ता पूर्व अनुभव के आधार पर सन्देश को समझने का प्रयास करते है ये पूर्व अनुभव हमारी पृष्ठभूमि से संबन्धित होते है, पूर्व पृष्ठभूमि से तात्पर्य पूर्व अधिगम, संस्कृति तथा पूर्व कार्यस्थिति तथा पूर्व कार्य का वातावरण है। पृष्ठभूमि के अनुभव सन्देश की एंकोडिंग या डिकोंडींग करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है । पृष्ठभूमि के पूर्व अनुभव, आवश्यकताएँ तथा मूल्यों के संदर्भ प्राप्त सन्देश को समझने में कभी तो बहुत सहायक होते है तथा कभी-2 सन्देश का अर्थ समझने में बाधा के रूप में अपनी भूमिका निभाते है ।

5.5 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपाय

शैक्षिक प्रशासन के सभी कार्य तभी सफलतापूर्वक संचालित हो सकते हैं जब शैक्षिक प्रशासन से जुड़े व्यक्तियों के प्रभावशाली सम्प्रेषण हो। एक प्रभावशाली सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए -

(1) शैक्षिक प्रशासक को उत्तरदायित्व निदेशन के दौरान सन्देश /निर्देश बहुत ही अच्छी प्रकार से तैयार करके देना चाहिये।

(2) विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को भी पूर्वाग्रह से रहित होकर स्पष्ट भाषा एवं उच्चारण के साथ शिक्षण करना चाहिये।

(3) शैक्षिक प्रशासक को समूह की राय/प्रतिक्रिया लेते समय गंभीरतापूर्वक सभी के विचारों को सुनना चाहिये तभी किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए।

(4) शैक्षिक प्रशासक संस्था के हित में कर्मचारियों का मूल्यांकन करता है। उसे संस्था से जुड़े व्यक्तियों के समक्ष मूल्यांकन के उद्देश्यों को उचित प्रकार से स्पष्ट करना चाहिये।

(5) शैक्षिक प्रशासन की सबसे बड़ी बाधा प्रशासक एवं अधीनस्थ कर्मचारियों के बीच संवादहीनता की स्थिति बनी रहना। यह सम्प्रेषण में बड़ी बाधा है। प्रशासक को समय-समय पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से कर्मचारियों से औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों रूप से मिलते रहना चाहिए।

(6) शैक्षिक प्रशासक को सरल, सुगम, सुबोध तथा स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिए। किस शब्द का प्रयोग कहा तथा किस लिए किया गया है यह संदर्भ स्पष्ट होना चाहिए।

(7) संदेश को लिखते समय विशेष सावधानी बरतना चाहिए उसे इस प्रकार लिखा जाना चाहिए कि संदेश ग्रहण करने वाला उसे आसानी से समझ सके। संदेश की ईंकोडिंग उचित तरीके से की जानी चाहिए। अर्थात प्रशासक द्वारा तैयार कराया गया कोई भी निर्देश भाषायी दृष्टि से सही होना चाहिए।

(8) संदेश में यदि किसी बात पर विशेष बल देने की आवश्यकता है तो उसकी पुनरावृति एक निश्चित सीमा तक की जा सकती है

(9) संदेश के स्वरूप या प्रकृति के अनुसार ही उचित चैनल या माध्यम का चुनाव किया जाना चाहिए तथा यदि आवश्यक हो तो एक साथ अनेक चैनल का प्रयोग क्रमानुसार भी किया जा सकता है।

(10) प्रतिपुष्टि(Feedback) अवश्य प्रदान की जानी चाहिए तथा प्रतिपुष्टि प्रदान करने में विलंब नहीं किया जाना चाहिए ताकि पता चल सके कि संदेश अपना सही अर्थ प्रेषित कर सका है कि नहीं।

(11) सम्प्रेषण प्रक्रिया में देरी करने वाले तत्वों पर नजर रखी जानी चाहिए।

(12) संदेश स्रोत /संदेश भेजने वाले तथा संदेश ग्रहणकर्ता ऐसा होना चाहिए जिसका उच्चारण सुस्पष्ट हो तथा उसके संदेश में भाषायी कमियाँ कम से कम हो अर्थात ऐसे शिक्षक, कर्मचारी तथा शैक्षिक प्रशासक शैक्षिक संस्था में नियुक्त किये जाने चाहिए जिनमें भाषायी योग्यता हो।

(13) संदेश ग्रहण कर्ता को सुनने की अच्छी आदत डालनी चाहिए इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(अ) जो व्यक्ति संदेश लाया है उसे देख कर अथवा संदेश का लिफाफा देख कर संदेश के बारे में अनुमान लगाना गलत है।

(ब) संदेश सुन कर अथवा पढ़कर विचारों की अपेक्षा संदेश में निहित तथ्यों की ओर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए।

(स) यदि कक्षा में कोई बात स्पष्ट न हुई हो तो तुरंत पूछने के अपेक्षा कक्षा के अंत में अपनी समस्या रखना चाहिए जिससे शिक्षक को प्रारम्भ से अंत तक बिना किसी हस्तक्षेप के सुना जा सके।

(द) सुनते समय अन्य दृश्यों अथवा शोर आदि पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

(य) सुनते समय कहने वाले की बात, उसकी मुखमुद्रा, उसकी आवाज़, उसकी कहने की गति आदि पर भी ध्यान देना चाहिए क्योंकि अच्छे प्रकार सुनने वाले व्यक्ति हमेशा अच्छा सम्प्रेषण करने में समर्थ होते है।

(र) यदि सुनते समय आस-पास बहुत शोर हो रहा हो तो उस शोर को कम करवाने हेतु प्रयास किया जाना चाहिए।

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के प्रारम्भ में आपने अध्ययन किया कि शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण की प्रक्रिया किसप्रकार समाहित है। शैक्षिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों- उद्देश्यीकरण, नियोजन, व्यवस्थापन, परिचालन तथा मूल्यांकन में सम्प्रेषण किसप्रकार अपनी भूमिका अदा करता है यह आपने विस्तृत रूप से समझा। उद्देश्यीकरण के अंतर्गत संस्था के कर्मचारियों को उद्देश्यों का आत्मिकरण करने मे सम्प्रेषण की भूमिका है। उद्देश्यों को कार्य रूप में परिवर्तित करने के लिये एक अच्छी कार्यप्रणाली का चुनाव करना नियोजन है तथा कर्मचारियों को उनके कर्तव्य एवं दायित्व सौपना साथ ही साथ कार्य में संलग्न सभी कर्मचारियों की क्रियाओं तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये प्रयोग में आने वाले साधनों का समन्वयन तथा एकीकरण करना व्यवस्थापन है। सम्प्रेषण नियोजन एवं व्यवस्थापन के लिये भी आवश्यक है। योजनाओं को व्यवहारिक एवं कार्यरूप में परिणित करना परिचालन है। इस हेतु तीन महत्वपूर्ण कार्य निदेशन, समन्वयन और नियंत्रण पूरे करने होते है। मूल्यांकन का उद्देश्य प्रशासनिक प्रक्रिया की कमियों को ढुढ़ना एवं सुधार हेतु सुझाव देना है। परिचालन एवं मूल्यांकन कार्य बिना सम्प्रेषण के असंभव है। इस इकाई के मध्य में आपने सम्प्रेषण की बाधाओं के बारे में अध्ययन किया। सम्प्रेषण में मुख्य बाधाएँ भौतिक, भाषा सम्बन्धी, मनोवैज्ञानिक एवं पृष्ठ-भूमि सम्बन्धी हैं। शोर, अदृश्यता, वातावरण, खराब स्वास्थ्य भौतिक बाधाएँ हैं। अस्पष्ट शब्द, अनावश्यक शब्द, गलत उच्चारण, अस्पष्ट संकेत भाषा सम्बन्धी बाधाएँ है। अरुचि, गलत प्रत्यक्षीकरण, जरूरत से अधिक चिन्ताएँ मनोवैज्ञानिक बाधाएँ है। पूर्व अधिगम, पूर्व कार्य का वातावरण पृष्ठभूमि सम्बन्धी बाधाएँ हैं। शैक्षिक प्रशासन में उपरोक्त बाधा को दूर करने के लिये कुछ सुझावों का अध्ययन किया जैसे सरल, सुगम, सुबोध भाषा का प्रयोग करना चाहिए, संदेश की ईंकोडीन उचित हो सही माध्यम का चुनाव हो, प्रतिपुष्टि की व्यवस्था उचित समय पर हो तथा कर्मचारियों में सुनने की अच्छी आदत डाली जानी चाहिये। शैक्षिक प्रशासक को सरल, सुगम, सुबोध तथा स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना चाहिए। किस शब्द का प्रयोग कहा तथा किस लिए किया गया है यह संदर्भ स्पष्ट होना चाहिए।

5.7 शब्दावली

उद्देश्यीकरण- शैक्षिक प्रशासक द्वारा समाज द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को स्वीकृति प्रदान करवाना, उनकी प्राप्ति हेतु साधनों को निर्धारित करने में सभी कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करना उद्देश्यीकरण है।

नियोजन- उद्देश्यों को कार्य रूप में परिवर्तित करने के लिए अनेक विकल्पों में से एक अच्छी कार्य- प्रणाली का चुनाव करना ही नियोजन है।

व्यवस्थापन- व्यवस्थापन व्यक्तियों, वस्तुओं एवं स्थानों को इस प्रकार से समन्वित एवं एकीकृत करना ताकि वांछित उद्देश्यों की दिशा में स्वतंत्र प्रयास किए जा सकें। इसमें संबन्धित व्यक्तियों को कर्तव्य एवं दायित्व सौंपा जाता है।

परिचालन- परिचालन का तात्पर्य योजनाओं को व्यावहारिक एवं कार्य रूप में परिणित करना है। परिचालन के अंतर्गत निदेशन, समन्वयन एवं नियंत्रण होता है।

निदेशन – शैक्षिक संस्था में कर्मचारियों एवं व्यक्तियों को यह बताया जाना कि क्या किया जाना है? निदेशन है।

समन्वयन- समन्वयन सभी वस्तुओं, गतिविधियों को जोड़ कर रखने की प्रक्रिया जिससे कि वे अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य कर सकें।

मूल्यांकन- प्रशासनिक प्रक्रिया की कमियों का पता लगाकर उनको दूर करने के लिए सुझाव प्रदान करना मूल्यांकन है। मूल्यांकन व्यक्ति व समूह की उन्नति के लिए किया जाता है।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुलश्रेष्ठ , एस॰ पी॰(2009),शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।
2. माथुर, एस. एस. (1996),शैक्षिक तकनीकी, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. शर्मा, आर. ए. (2010), शिक्षा तकनीकी, लायल बुक डिपो, मेरठ।
4. सिंह, आर॰ पी॰(2010), शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
5. सुखिया, एस॰ पी॰(2012),विद्यालय प्रशासन संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
6. ओड़,एल॰के॰(संपादक)(2008), शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
7. भटनागर, आर॰ पी॰ एवं अग्रवाल,विद्या(1998), शैक्षिक प्रशासन, लायल बुक डिपो, मेरठ।
8. वर्मा, जे॰ पी॰(2007), शैक्षिक प्रबंधन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
9. सिंह, आर॰ पी॰(2010), शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
10. शर्मा, प्रतिष्ठा(2009), शैक्षिक प्रबंध एवं विद्यालय संगठन, साहित्य प्रकाशन, आगरा

11. Mukherji, S.N. (1970). *Administration of Education, Planning and Finance*. Baroda: Acharya Book Depot.
12. Mukherji, L. (1970). *Problems of Administration of Education in India*, Lucknow: Lucknow Publishing House.
13. Shukla, P.D. (1983). *Administration of Education in India*, New Delhi: Vikas Publication House.
14. Agrawal, J. C. (2010). Educational Technology & Management. Agra: Shree Vinod Pustak Mandir Acharya Book Depot.
15. Sampath, K., Panneerselvam, A. & Santhanam, S. (2007). Introduction to Educational Technology. New Delhi: Sterling Publishers Private Ltd.
16. Mohanty, S.B. (1986). Educational Technology. New Delhi: kalyani Publishers.
17. Mohanty, J. (1992). Educational Technology. New Delhi: Deep & deep Publishers.
18. Kumar, K.L. (1996). Educational Technology. New Delhi: New Age Publishers.
19. Anand, P.S. (1996). Essentials of Teaching and Learning. Rohtak : Unique Publication.
20. Chand, Tara (1990). Educational Technology. New Delhi: Anmol Publishers.
21. Thornburg, H. (1973). School Learning and Instruction. California: Wordsworth Publishing Co. Belmod.

5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Balfour, Graham (1921). *Educational Administration*. Oxford: The Clarendon Press.
2. Banghart, F.W.and Alburt Trull, Jr. (1973).*Educational Planning. New York: McMillan.*
3. Campbell,R.F., J.E. Corbally and R.O. Nystrand (1983). *Introduction to Educational Administration.6th Ed.* Boston: Allyn Bacon Inc.
4. Brunner, J.S. (1966). Towards a theory of instruction. Massachussets: Harward University Press.

5. Decceco, John P. (1970). The Psychology of Learning and Instructional technology. New Delhi: Prentice Hall Pvt. Ltd.
6. Raths, James & et al. (1971). Studying Teaching. New Jersey: Prentice Hall Inc.
7. Sharma, R.A. (1983). Technology of teaching. Meerut: International Publishing House.
8. Storms, R.D. (1971). Teaching and Learning Process. New Jersey: Prentice Hall Inc.
9. Green Thomas, F. (1971). The activities of teaching. London: Mc Graw Hill Company.

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न-1 सम्प्रेषण से आप क्या समझते है तथा सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं का विस्तृत वर्णन कीजिये?

प्रश्न-2 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं से आप क्या समझते है व्याख्या कीजिये?

प्रश्न-3 शैक्षिक प्रशासन में सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपायों का उल्लेख कीजिये?

प्रश्न-4 सम्प्रेषण में आने वाली बाधाओं का वर्गिकरण कर उनमें अंतर स्पष्ट कीजिये?

इकाई 6 विद्यालय प्रबन्धन

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक की भूमिका।
6.3.1 विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका।
6.3.2 विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में शिक्षक की भूमिका।
6.4 सारांश:-
6.5 निबन्धात्मक प्रश्न

6. 1 प्रस्तावना

विद्यालय शब्द स्वयं में अपने अर्थ को अभिव्यक्त कर रहा है। विद्यालय अर्थात् विद्या का घर, अर्थात् वह स्थान जहाँ पर रहकर विद्यार्थी ज्ञान का अर्जन करता है।

यदि हम विद्यालय शब्द को परिभाषित करें तो हम कह सकते हैं कि - ''विद्यालय वह स्थान है जहाँ विद्यार्थी अपने घर से दूर जाकर एक निश्चित स्थान पर कुशल अध्यापकों के निर्देशन में सामूहिक रूप से औपचारिक शिक्षा ग्रहण करता है''।

उक्त परिभाषा हमें यह बोध कराती है कि-
विद्यालय एक संस्था है।
इसमें विद्यार्थी एवं अध्यापकों का होना अनिवार्य है।
इस संस्था का मुख्य कार्य अध्ययन एवं अध्यापन है।
विद्यालय की उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि विद्यालय नामक संस्था को प्रबन्धन की आवश्यकता अनिवार्य रूप से पड़ती है। बिना प्रबन्धन के विद्यालय का संचालन असंभव कार्य है।

'प्रबन्धन' शब्द का अर्थ है 'व्यवस्था करना' विद्यालय के प्रबन्धन में अध्ययन, अध्यापन तथा विद्यालय संचालन से सम्बद्ध समस्त प्रकार की व्यवस्थायें सम्मिलित हैं।

विद्यालय सहित किसी भी प्रकार के प्रबन्धन में मानवीय क्षमताओं का उपयोग अनिवार्य है। मानवीय क्षमताओं का उपयोग किये बिना हम विद्यालय अथवा अन्य किसी भी संस्था का संचालन नहीं कर सकते।

विद्यालय प्रबन्धन में अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों एवं संस्थाओं का योगदान सम्मिलित है।

विद्यालय को शिक्षा एवं ज्ञान का मंदिर कहा जाता रहा है। विद्यालय एक ऐसी संस्था है जहाँ दक्ष शिक्षकों के मार्गदर्शन में छात्र अपनी क्षमता तथा योग्यता के अनुसार शिक्षा ग्रहण करते हैं। यह शिक्षा न सिर्फ

उनका सर्वांगीण विकास करती है बल्कि उन्हें वास्तविक जीवन की कठिनाईयों का सामना करने तथा अपने भविष्य का निर्माण करने की क्षमता भी प्रदान करती है। बदलते समय के साथ विद्यालय का कार्य एवं उसके स्वरूप में बहुत अंतर आया है।

शिक्षा के बदलते स्वरूप को ध्यान में रखते हुए विद्यालयों में पठन-पाठन का कार्य उसके अनुरूप क्रियान्वित करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि विद्यालय में हर स्तर पर नियुक्त व्यक्ति के कत्तव्यों तथा उसके कार्यों को पूर्ण रूप से समझा जाये। वैसे तो विद्यालय में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति का अपना महत्व होता है परन्तु, चूंकि विद्यालय का मुख्य उद्देश्य शिक्षा प्रदान करना होता है अतः शिक्षक तथा प्रधानशिक्षक जिसे हम प्रधानाध्यापक भी कहते हैं की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। अतः विद्यालय के उचित संचालन के लिये अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक की भूमिका को समझना तथा परिभाषित करना सबसे महत्वपूर्ण है।

इस पाठ में हम शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक की विद्यालय में भूमिका का ही अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई की संरचना निम्नांकित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की गयी है ।प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात्

- हम विद्यालय के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- हम विद्यालय के प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका से अवगत हो सकेंगे।
- हम शिक्षक, नियोजक एवं पर्यवेक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका को जान सकेंगे।
- हम यह जान सकेंगे कि नेता के रूप में प्रधानाध्यापक की क्या भूमिका होती है।
- हम इस बात से अवगत हो सकेंगे कि विद्यालय के संगठन में प्रधानाध्यापक की क्या भूमिका होती है।
- हम मानवीय सम्बन्धों की स्थापना तथा निर्देशन कार्य में प्रधानाध्यापक की भूमिका से अवगत हो सकेंगे।
- हम यह भी जान सकेंगे कि मूल्यांकन कार्य तथा अनुशासन स्थापना में प्रधानाध्यापक की क्या भूमिका होती है।
- हम एक शिक्षक के प्रबन्धकीय एवं प्रशासकीय गुणों से अवगत हो सकेंगे।
- हम प्रधानाध्यापक की ही भाँति शिक्षक की विभिन्न भूमिकाओं से अवगत हो सकेंगे।

6.3 विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक की भूमिका

शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक के कर्तव्यों तथा उनकी भूमिका को समझने से पहले उन्हें परिभाषित करना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षक एक मार्गदर्शक तथा पथ प्रदर्शक होता है जो विद्यार्थियों को हर प्रकार से शिक्षा

प्रदान कर उन्हें समाज में रहने लायक एक योग्य मनुष्य बनाता है। अतः कहा जा सकता है कि शिक्षक का कार्य विद्यालय में आने वाले विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करना, उन्हें उचित मार्गदर्शन देना तथा कृत्रिम परिस्थितियाँ प्रस्तुत कर उन्हें समाज में रहने योग्य बनाना होता है। प्रधानाध्यापक विद्यालय का प्रधान शिक्षक होता है। प्रधान होने के नाते उसका कार्य थोड़ा बढ़ जाता है। एक शिक्षक के कार्यों का निर्वहन तो उसे करना ही होता है उसके साथ-साथ शिक्षकों का भी नेतृत्व तथा मार्गदर्शन करना होता है। यदि शिक्षक का कार्य शिक्षा प्रदान करना है तो यह प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है कि वह विद्यालय में ऐसा वातावरण उत्पन्न करे कि शिक्षण का कार्य कुशलता एवं सफलता से बिना किसी अवरोध के चलता रहे।

आइये अब हम विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में शिक्षक तथा प्रधानाध्यापक की भूमिका का अलग-अलग अध्ययन करते हैं।

6.3.1 विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका

मोटे तौर पर एक प्रधानाध्यापक की भूमिका को ऊपर वर्णित तथा परिभाषित किया जा चुका है। प्रधानाध्यापक एक शिक्षक तो होता ही है साथ-साथ वह विद्यालय का संचालक, शिक्षकों का मुखिया, नेता तथा निर्देशक भी होता है। विद्यालय में शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक की वही भूमिका होती है जो मंच पर कलाकारों तथा निर्देशक की होती है।

प्रधानाध्यापक की भूमिका को लेकर अनेक शिक्षाविदों एवं विचारकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं -

पी0सी0रैन के अनुसार ''जो घड़ी का मुख्य स्प्रिंग, मशीन का मुख्य पहिया या भाप के जहाज का इंजन होता है, उसी प्रकार स्कूल के लिये हैडमास्टर होता है।''

डा0 जसवन्त सिंह का विचार है, ''हैडमास्टर या स्कूल का प्रिंसिपल शिक्षा प्रणाली की धुरी होते हैं। उसके प्रभाववश शिक्षक नेता होने की योग्यता एवं निपुणता पर ही स्कूल की सफलता निर्भर है।''

केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा बोर्ड के अनुसार, ''कोई भी शिक्षा सुधार स्कीम तब तक आवश्यक परिणाम नहीं दे सकती है, जब तक उसको दूरदर्शिता तथा निपुणता से लागू नहीं किया जाता।

विभिन्न विद्वानों के उपरोक्त कथन यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि विद्यालय में प्रधानाध्यापक की भूमिका केन्द्रीय होती है। यदि हम विद्यालय में, विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका को व्यवस्थित रूप से अभिव्यक्त करना चाहें तो प्रधानाध्यापक की भूमिका को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत कर सकते हैं -

शिक्षक के रूप में।
नियोजक के रूप में।

पर्यवेक्षण कार्य में।
नेतृत्व कार्य में।
संगठन कार्य में।
मानवीय सम्बन्धों की स्थापना में।
निर्देशन कार्य में।
मूल्यांकन कार्य में।
अनुशासन स्थापना में।
निर्णय लेने में।
आर्थिक प्रबन्धन में।

शिक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक को एक कुशल शिक्षक होना चाहिये। यह उसके कत्र्तव्यों में सबसे प्रमुख एवं मूलभूत उत्तरदायित्व है। उसे एक आदर्श शिक्षक का उदाहरण अन्य शिक्षकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए एवं ऐसा आचरण करने के लिये उन्हें प्रेरित करना चाहिए। उसे अपने विषय का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। तथा समय पड़ने पर कक्षा में जा कर शिक्षण का कार्य करने के लिये तत्पर रहना चाहिये। सामान्यतः भी उसे शिक्षक की भूमिका का निर्वहन करते हुए छात्रों को समय-समय पर उचित शिक्षा तथा मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिये।

नियोजक के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक को एक अच्छा संचालक भी होना चाहिये। अच्छा संचालक होने के लिये उसे अच्छा नियोजक बनना होता है। नियोजन, संस्थान के संचालन का अभिन्न अंग है। बिना उचित नियोजन के कुशल संचालन की बात व्यर्थ होती है। नियोजन के अन्तर्गत प्रधानाध्यापक के निम्नलिखित उत्तरदायित्व होते हैं-

- विद्यालय में स्थूल संसाधनों की आवश्यकतानुसार उपलब्धता का ध्यान रखना।
- प्रवेश सम्बन्धी नियमावली तथा प्रवेश प्रक्रिया की रूपरेखा तैयार करना।
- विद्यालय की आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम निर्धारण तथा उसके आधार पर पुस्तकों का चयन करना।
- विद्यालय में खेल-कूद तथा अन्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन एवं संचालन करना।
- शिक्षकों का चयन तथा उनके मध्य कार्य का उचित विभाजन करना।
- पाठ्यक्रम के अनुसार सभी कक्षाओं में प्रभावी रूप से शिक्षण कार्य सम्पन्न किया जाये इस हेतु शिक्षण नियोजन करना।
- परीक्षण एवं मूल्यांकन आयोजित करने हेतु सारिणी तैयार करना।
- विद्यालय की शैक्षिक एवं अन्य गतिविधियों को उचित एवं सुनियोजित रूप से पूर्ण कराने हेतु विद्यालय का वार्षिक कैलेण्डर तैयार करना।

पर्यवेक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका -

संचालक को उचित नियोजन के साथ-साथ कुशल एवं सही पर्यवेक्षण का ज्ञान होना भी आवश्यक है। किसी भी संस्थान के सफल संचालन के लिये जितना आवश्यक अनेक योजनाओं को नियोजित रूप से तैयार करना है, उतना ही आवश्यक उन योजनाओं के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिये समय-समय पर पर्यवेक्षण करना होता हैं पर्यवेक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक को निम्नलिखित कार्य करने होते हैं:-

1.पर्यवेक्षक के रूप में प्रधानाध्यापक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य विद्यालय में हो रहे शिक्षण कार्य का पर्यवेक्षण करना होता है। समय सारिणी के अनुसार कक्षाएँ संचालित हो रही हैं या नहीं, शिक्षकों की गलतियाँ जानकर उन्हें दूर करना, उनकी समस्याओं का निवारण करना, शिक्षण-सामग्री उपयुक्त मात्रा में प्रत्येक कक्षा एवं विषय के लिये उपलब्ध कराना, शिक्षकों के कार्य की गुणवत्ता को बढ़ाने हेतु समय-समय पर उन्हें उचित परामर्श तथा मार्गदर्शन देना यह सभी कार्य प्रधानाध्यापक के कत्र्तव्यों के अन्तर्गत आते हैं।

2.प्रधानाध्यापक का कार्य सिर्फ शिक्षण कार्य तक ही सीमित नहीं होता अपितु उसे कार्यालय सम्बन्धी कार्यों का भी पर्यवेक्षण करना होता है। कार्यालय के शैक्षिक, आर्थिक तथा अन्य प्रशासनिक आलेखों पर नजर रखना तथा उनकी देखरेख रखना भी प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है।

3.इसके अतिरिक्त खेल-कूद, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम, कैन्टीन, हास्टल, विद्यालय का भवन तथा चल-अचल सम्पत्ति की देखरेख तथा पर्यवेक्षण आदि करना भी प्रधानाध्यापक का ही कार्य होता है।

नेता के रूप में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

यह वह कर्तव्य है जो प्रधानाध्यापक के कार्यों का मुख्य एवं अभिन्न अंग होता है। प्रधान अध्यापक यह संज्ञा स्वतः ही उसे एक मुखिया, एक नेता की भूमिका में ला कर खड़ा कर देती है। प्रधानाध्यापक न सिर्फ शिक्षकों का मुखिया होता है बल्कि वह पूरे शिक्षण संस्थान का नेता होता है। विद्यालय से सम्बन्धित प्रत्येक गतिविधि चाहे वह शिक्षण से सम्बन्धित हो या अन्य किसी भी प्रकार की पाठ्य-सहगामी गतिविधि हो का नेतृत्व करना प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है। यह उसकी कार्य-कुशलता एवं योग्यता पर निर्भर करता है कि वह अपने नेतृत्व में विद्यालय का संचालन कितनी कुशलता के साथ कर सकता है, तथा विद्यालय के उद्देश्यों को कितनी सफलतापूर्वक पूर्ण कर पाता है।

संगठन में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक की भूमिका में विद्यालय संगठन का कार्य भी सम्मिलित किया जाता है। संगठन के अन्तर्गत प्रधानाध्यापक के कार्यों को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया जा सकता है-

- प्रधानाध्यापक को यह सुनिश्चित करना आवश्यक होता है कि विद्यालय के स्थूल तथा मानव संसाधनों को संयुक्त रूप से इस प्रकार उपयोग में लाया जाये कि संस्थान का श्रेष्ठतम विकास हो सके।

- सभी कर्मचारियों तथा शिक्षकों के मध्य उचित सामन्जस्य तथा सम्प्रेषण स्थापित कर मानव संसाधन का उपयुक्त प्रयोग सुनिश्चित करना भी प्रधानाध्यापक का कार्य होता है।
- प्रधानाध्यापक उचित मार्गदर्शन तथा प्रोत्साहन प्रदान कर प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता के अनुसार कार्य का विभाजन करता है, तथा उन्हें विद्यालय के संचालन में अपना श्रेष्ठतम् योगदान देने हेतु प्रेरित करता है।
- वह मानव एवं स्थूल संसाधनों का उत्कृष्ट संगठन कर कार्यकुशलता बढ़ाने तथा कार्य को और प्रभावी बनाने के लिये कार्यरत रहता है।
- संस्थान के भीतर तथा बाहर, उचित प्रोत्साहन, प्रगाढ़ता तथा माधुर्य सुनिश्चित करना भी प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है।
- प्रधानाध्यापक को न सिर्फ अपने अधीनस्थों से कुशलतापूर्वक कार्य लेना होता है बल्कि यह भी सुनिश्चित करना होता है कि विद्यालय संगठन से वह प्रसन्न भी रहें ताकि किसी भी अप्रिय स्थिति या समस्या की सम्भावना उत्पन्न न हो सके।
- इन सभी बातों को ध्यान में रखकर वह सभी के कर्तव्यों को परिभाषित करता है तथा सभी के मध्य कार्य का विभाजन करता है।

मानवीय सम्बन्धों की स्थापना में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक विद्यालय की सभी गतिविधियों की धुरी होता है। उसे विद्यालय से सम्बन्धित प्रत्येक वर्ग, चाहे वह कर्मचारी वर्ग हो, शिक्षक वर्ग हो, छात्र हों या प्रबन्धन या अभिभावक वर्ग के मध्य सामंजस्य बना कर रखना होता है। इस सन्दर्भ में प्रधानाध्यापक की भूमिका को निम्नलिखित रूप से वर्णित किया जा सकता है -

- वह वैसे तो शिक्षक वर्ग का मुखिया होता है परन्तु सभी शिक्षकों से अधीनस्थों की भांति नहीं अपितु मित्रों तथा सहयोगियों की भाँति व्यवहार करना होता है ताकि उन्हें उचित प्रोत्साहन मिले तथा शिक्षण के साथ-साथ संचालन के कार्य में वे लोग रूचि भी लें तथा अपना कत्तव्य भी समझें। सभी शिक्षकों को अपनी बात कहने, सुझाव या प्रस्ताव देने तथा अपनी समस्या व्यक्त करने की आजादी प्रधानाध्यापक द्वारा मिलती है तभी उसे इनका पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है।
- शिक्षक वर्ग के अतिरिक्त छात्रों से भी सम्पर्क तथा सम्बन्ध स्थापित करना प्रधानाध्यापक का कत्तव्य होता है। इस कार्य के लिये वह कभी कक्षाओं में जाकर, या छात्र संघ के माध्यम

से छात्रों से सम्पर्क स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त छात्रों को भी किसी समस्या के निवारण के लिये प्रधानाध्यापक से सम्पर्क स्थापित करने की आजादी दी जानी चाहिये।

- विद्यालय के सफल संचालन के लिये प्रधानाध्यापक को अभिभावक वर्ग के सहयोग की भी आवश्यकता होती है, जिसके लिये उनसे सम्पर्क स्थापित करना भी आवश्यक है। अतः उसे समय-समय पर अभिभावकों की मीटिंग की व्यवस्था करनी होती है, तथा समय पर या विशेष परिस्थितियों में निजी रूप से भी उनसे सम्पर्क रखने की आवश्यकता होती है।
- इसके अलावा प्रधानाध्यापक को शिक्षा बोर्ड तथा प्रबन्धन समिति से भी सम्पर्क बनाये रखना होता है।

निर्देशन में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

विद्यालय का मुख्य अधिकारी होने के नाते सभी शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों को समय-समय पर उचित निर्देशन देना प्रधानाध्यापक का कार्य होता है जिसका उल्लेख उसके पर्यवेक्षण तथा संगठन के कार्यों में किया जा चुका है। शिक्षा के बदलते स्वरूप के साथ आज शिक्षा केवल ज्ञान प्रदान करने का नाम नहीं रह गई है, अपितु यह शिक्षण-संस्थान का कत्र्तव्य बनता जा रहा है कि वह छात्रों को न केवल उच्च शिक्षा के लिये विषयों के चयन में सहायता तथा मार्गदर्शन प्रदान करे बल्कि उनकी अभिरूचियों तथा योग्यता को समझकर उनके लिये उचित व्यवसाय का चयन करने में भी उनको सहायता प्रदान करे। इसके लिये विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं। चूंकि यह विद्यालय का तथा शिक्षा का अंग है, प्रधानाध्यापक को ही इसके संचालन का भार उठाना होता है। अतः प्रधानाध्यापक के निर्देशन कार्यक्रम निर्वाह में प्रमुख उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं -

- निर्देशन कार्यक्रम हेतु उचित भवन, धन तथा समय की व्यवस्था करना।
- छात्रों तथा अभिभावकों को निर्देशन सेवाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।
- विद्यालय के शिक्षकों को, निर्देशन का महत्व, समस्याएँ तथा उद्देश्यों को समझने में सहयोग प्रदान करना।
- विद्यालय में योग्य एवं कुशल निर्देशन कार्य-कर्ताओं की नियुक्ति, उनके मध्य कार्य का वितरण, उन्हें इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु समय-समय पर उचित प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था करना, विद्यालय में निर्देश-समिति का गठन करना।
- इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम का नेतृत्व, संचालन तथा कार्यक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना भी प्रधानाध्यापक की भूमिका में सम्मिलित होता है।

मूल्यांकन कार्य में प्रधानाध्यापक की भूमिका :-

मूल्यांकन, प्रशासन का एक अभिन्न अंग होता है। किसी भी संस्थान के प्रभावी रूप से कार्य करने को सुनिश्चित करने के लिये न केवल कुशल नियोजन, संगठन तथा निर्देशन की आवश्यकता होती है बल्कि उचित नियंत्रण की भी आवश्यकता होती है। संस्थान की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने तथा उसकी कार्यकुशलता तथा प्रभावशीलता को बनाये रखने के लिये मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक होता है।

मूल्यांकन को भी अनेक स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है। शिक्षण स्तर पर छात्रों का मूल्यांकन तथा प्रशासनिक स्तर पर अन्य कर्मचारियों, शिक्षकों तथा विद्यालय में गठित अनेक समितियों का मूल्यांकन। शिक्षकों, कर्मचारियों तथा अन्य समितियों के मूल्यांकन के लिये प्रधानाध्यापक पर्यवेक्षण की सहायता लेता है, परन्तु छात्रों के शैक्षिक मूल्यांकन के लिये उसे विद्यालय में मासिक, अर्ध-वार्षिक तथा वार्षिक परीक्षाओं का आयोजन तथा संचालन करना होता है। इसके अतिरिक्त उनके व्यक्तित्व विकास का मूल्यांकन करने के लिये उसे समय-समय पर विद्यालय में अनेक प्रकार की पाठ्य-सहगामी गतिविधियों, प्रतियोगिताओं तथा कार्यशालाओं का भी आयोजन करना होता है।

अनुशासन स्थापना में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

यह तो हम सभी को ज्ञात है कि विद्यालय में उचित शिक्षण वातावरण उपलब्ध कराना प्रधानाध्यापक का कत्र्तव्य होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उचित अनुशासन की आवश्यकता होती है। विद्यालय में अनुशासित वातावरण बनाये रखने का कार्य भी प्रधानाध्यापक का ही होता है। इसके लिये वह कभी समझौते की तो कभी दण्डात्मक नीति अपनाता है। विद्यालय में अनुशासन सुनिश्चित करने के लिये प्रधानाध्यापक को निम्नलिखित कार्य करने पड़ते हैं -

- विद्यालय में अनुशासन समिति का गठन, उसका संचालन तथा समय-समय पर उसके कार्यें का मूल्यांकन करना।
- छात्रों, शिक्षकों तथा कर्मचारियों से निरन्तर सम्पर्क में रहकर उनकी समस्याओं का ज्ञान रखना तथा सम्भव समाधान खोजना ताकि सभी को जहाँ तक सम्भव हो संतुष्ट रखा जा सके।
- छात्र-संघ, शिक्षक-संघ तथा कर्मचारियों से सामन्जस्य बनाये रखना।
- विद्यालय में अराजक तत्वों के उदय को रोकने के लिये निदानात्मक नीति का पालन करना।
- किसी अप्रिय घटना के घटित होने पर स्थिति का उचित अवलोकन कर उचित कार्यवाही करना।

- समय आने पर अनुशासनहीन तत्वों के विरूद्ध सख्त एवं दण्डात्मक कार्यवाही करना भी प्रधानाध्यापक का कर्तव्य होता है।

निर्णय लेने में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

प्रधानाध्यापक की भूमिका एक नेता की अथवा एक मुखिया की होती है। एक नेता होने के नाते यह उसका उत्तरदायित्व होता है कि वह विद्यालय को अपने नेतृत्व में श्रेष्ठता तथा प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करे। इसके लिये उसे समय-समय पर आवश्यकतानुसार उचित निर्णय लेने होते हैं। विद्यालय से सम्बन्धित सभी क्रियाकलापों चाहें वह शिक्षण सम्बन्धी हो या प्रशासन सम्बन्धी, के लिये प्रधानाध्यापक को छोटे-बड़े निर्णय लेने होते हैं।

नियोजन के स्तर पर कक्षाओं का विभाजन, पाठ्यक्रम, पुस्तकों, शिक्षकों के मध्य कार्य का विभाजन आदि, इसके अतिरिक्त विद्यालय के क्रियाकलापों से सम्बन्धित सारिणी, कर्मचारियों का अवकाश, वेतन आदि छोटी-छोटी बातों पर प्रधानाध्यापक को निर्णय लेना होता है।

संकट की स्थिति में, या किसी समस्या के उत्पन्न हो जाने पर प्रधानाध्यापक में निर्णय शक्ति का होना और भी आवश्यक हो जाता है। इसके लिये आवश्यक है कि वह सर्वप्रथम समस्या को समझे, उसके पश्चात उसके निवारण हेतु अनेक प्रकार के सुझावों पर विचार करे, स्थिति का अवलोकन कर जो उपाय सबसे उचित हो उसका प्रयोग कर शीघ्र समस्या का समाधान करे।

निर्णय लेना, एक प्रशासक के रूप में प्रधानाध्यापक का एक महत्वपूर्ण कत्र्तव्य होता है। विद्यालय की प्रतिष्ठा तथा विकास, छात्रों का भविष्य तथा उनका विकास सभी कुछ प्रधानाध्यापक की कुशल निर्णय क्षमता पर निर्भर करता है।

आर्थिक प्रबन्धन में प्रधानाध्यापक की भूमिका:-

किसी भी संस्थान के कुशल एवं सफल संचालन के लिये जितनी आवश्यकता कुशल प्रशासन की होती है उतनी ही आवश्यकता आर्थिक संसाधनों की भी होती है। वैसे तो विद्यालय के पास आय के अपने साधन होते हैं जैसे कि छात्रों की फीस, शिक्षा बोर्ड से प्राप्त अनुदान आदि परन्तु इस आय को उचित रूप से छात्रों की, शिक्षा की तथा विद्यालय की प्रगति तथा विकास में लगाना तथा इन आर्थिक संसाधनों का लेखा-जोखा रखना यह भी प्रधानाध्यापक के कत्र्तव्यों में से एक है। आर्थिक प्रबन्धन के लिये प्रधानाध्यापक को निम्न कार्यों की पूर्ति करनी होती है।

- विद्यालय के कार्यों तथा गतिविधियों के संचालन में कोई रूकावट न आये इसके लिये प्रधानाध्यापक को विद्यालय की आय के साधन बनाने होते हैं। परन्तु अन्य संस्थाओं को विद्यालय के लिये दान करने हेतु प्रेरित करना, विद्यालय की आवश्यकतानुसार बोर्ड से

अनुदान की मांग करना, प्रबन्धन समिति को विद्यालय की आवश्यकता से अवगत करना; यह सब प्रधानाध्यापक के ही उत्तरदायित्व होते हैं।

- आर्थिक संसाधनों को किस प्रकार उचित तथा उपयुक्त रूप से प्रयोग करना है ताकि उसका उपयोग विद्यालय के श्रेष्ठतम हित के लिये किया जा सके इसका निर्णय भी प्रधानाध्यापक को ही करना होता है। इसके लिये प्रधानाध्यापक को एक कुशल आर्थिक नियोजक होना अत्यन्त आवश्यक है।
- प्रधानाध्यापक को विद्यालय की आय तथा व्यय का अभिलेख भी रखना होता है। इसके अन्तर्गत विद्यालय की आय तथा किन-किन क्रियाओं में कितना व्यय हुआ इस सब का विवरण उसे रखना होता है।
- विद्यालय की अनेक समितियों तथा विभागों को दिया गया धन उचित रूप से प्रयोग किया जा रहा है, अथव नहीं इसका भी निरीक्षण प्रधानाध्यापक को करना होता है।
- समय-समय पर विद्यालय का आडिट करवाना भी उसी के कत्तव्यों के अन्तर्गत आता है तथा वह बोर्ड तथा प्रबन्धन समिति के प्रति जवाबदेह भी होता है।

इन सभी कत्तव्यों के उचित निर्वहन के लिये प्रधानाध्यापक को एक प्रभावी व्यक्तित्व का स्वामी होना चाहिये। आइये विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में प्रधानाध्यापक की जिन भूमिकाओं का वर्णन हम ऊपर की पंक्तियों में विस्तार से कर चुके हैं उन समस्त भूमिकाओं पर पुनः एक दृष्टि डाल लें।

किसी भी विद्यालय के कुशल संचालन के लिये-

(1) सर्वप्रथम प्रधानाध्यापक को एक अच्छा शिक्षक होना चाहिये। एक अच्छा शिक्षक ही उचित शिक्षा के महत्व को तथा छात्र हित को भली-भाँति समझ सकता है।

(2) उसे एक अच्छा तथा कुशल नेता होना चाहिये। विद्यालय की सफलता तथा प्रगति पूरी तरह से प्रधानाध्यापक के कुशल नेतृत्व पर निर्भर करती है।

(3) प्रधानाध्यापक को एक उच्च योग्यताओं वाला व्यक्ति होना चाहिय। उसकी सूझ-बूझ, शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता, विचार, उत्साह तथा व्यक्तित्व ही विद्यालय की पहचान होती है।

(4) प्रधानाध्यापक को एक कुशल मार्गदर्शक भी होना चाहिये। उसके कुशल मार्गदर्शन पर ही विद्यालय की प्रगति निर्भर है।

(5) प्रधानाध्यापक के पास अपने कार्यो ी तथा कत्तव्यों को कुशलता से पूर्ण करने हेतु व्यावसायिक प्रशिक्षण भी होना चाहिये।

(6) प्रधानाध्यापक एक उच्च कोटि का विद्वान होना चाहिए। जो अपनी विद्वता तथा ज्ञान के माध्यम से विद्यालय का श्रेष्ठतम् संचालन करता है, तथा कुशल प्रशासन करता है।

(7) प्रधानाध्यापक के पास एक सुदृढ़ तथा प्रगतिशील शिक्षा दर्शन भी होना चाहिये ताकि वह विद्यालय में श्रेष्ठ शिक्षा छात्रों के लिये उपलब्ध करवा सके।

6.3.2 विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन में शिक्षक की भूमिका

वैसे तो यह सभी जानते हैं कि प्रधानाध्यापक का कार्य विद्यालय में सबसे मुख्य होता है। वह विद्यालय का मुखिया, नेता तथा प्रशासक होता है। परन्तु जैसे कि कहा जाता है कि अकेला चना भाढ़ नहीं फोड़ सकता उसी प्रकार प्रधानाध्यापक अकेला पूरे विद्यालय का कार्यभार नहीं सम्भाल सकता, उसे हर कार्य में विद्यालय में कार्यरत शिक्षकों की सहायता लेनी पड़ती है। जिस प्रकार प्रधानाध्यापक शिक्षण तथा प्रशासनिक कार्यों का प्रतिनिधित्व करता है, उसी प्रकार शिक्षक भी प्रधानाध्यापक के आधीन रहकर विद्यालय के प्रशासन में अपना योगदान देता है। विद्यालय के प्रति उसकी भी जवाबदेही होती है, तथा उसे भी अपने कत्तव्यों तथा अपनी भूमिका निर्वहन पूरी निष्ठा के साथ करना होता है। विद्यालय के प्रशासन तथा संचालन में शिक्षक की भूमिका को निम्नलिखित रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

गुरू ज्ञान का मूल है, और गुणों की खान।

शीश दिये जो गुरू मिले, तो भी सस्ता जानि।

शिक्षक क्या है:- शिक्षक वह व्यक्ति है जो अपने शिक्षण कार्य के द्वारा छात्र के व्यवहार मे परिवर्तन का प्रयास करता है। वह छात्र को पशुत्व से मनुष्यता की ओर और मनुष्यता से देवत्व की ओर ले जाता है। साथ ही वह छात्र का सर्वांगीर्ण विकास करता है।

प्रबन्धक क्या है:-वह व्यक्ति जो अपने क्षेत्र या व्यवसाय को क्रमबद्ध रूप प्रदान करने के लिए योजनाओं का निर्माण कर व्यवस्था का प्रबन्ध करता है तथा सारी आवश्यकताओं की पूर्ती करते हुए संसाधनों का उचित प्रयोग करता है प्रबन्धक कहलाता है।

एक आदर्श शिक्षक में कलाकार, अभिभावक, पथ प्रदर्शक, मित्र, मनोवैज्ञानिक तथा संस्कृति के प्रतिनिधि होने का गुण विद्यमान है। एक आदर्श शिक्षक के गुणों के लिए बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। यहाँ पर समय तथा स्थानाभाव के कारण हम शिक्षक के केवल उन गुणों का संकेत मात्र करेंगे जिनके अभाव में शिक्षक, शिक्षक हो ही नहीं सकता।

आदर्श शिक्षक के गुण:-

अच्छे शिक्षक में निम्नलिखित गुण अनिवार्य रूप से होने चाहिए-

दूरदर्शिता।

विश्वसनीयता।

अनुशासन की भावना।

विषय का अच्छा ज्ञाता।

मृदु भाषी।

निर्णय लेने की क्षमता।

अच्छा नेता होना।

समायोजन की भावना।

आत्मविश्वासी।

ऊपर की पंक्तियों में हम आदर्श शिक्षक के अनिवार्य गुणों की संक्षिप्त चर्चा कर चुके हैं किन्तु यहाँ पर हमारी चर्चा का विषय 'शिक्षक एक प्रबन्धक एवं प्रशासक' के रूप में है अतः यहाँ पर हमें एक आदर्श प्रबन्धक एवं प्रशासक के गुणों की चर्चा कर लेना भी अनिवार्य प्रतीत होता है। नीचे की पंक्तियों में एक आदर्श प्रबन्धक एवं प्रशासक के अनिवार्य गुणों की ओर संकेत किया गया है।

आदर्श प्रबन्धक एवं प्रशासक के गुण :-एक अच्छे प्रबन्धक एवं प्रशासक में निम्नलिखित गुण अनिवार्य रूप से होने चाहिए-

एक अच्छा योजनाकार।

मृदु भाषिता।

शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता।

सहयोग की भावना।

संसाधनों का उचित प्रयोग करने की क्षमता।

दूर-दर्शिता।

नेतृत्व की क्षमता।

शिक्षक एवं प्रबन्धक को परिभाषित करते हुए हमने एक आदर्श शिक्षक, प्रबन्धक एवं प्रशासक के गुणों पर संक्षिप्त दृष्टिपात किया है। उपरोक्त चर्चा के पश्चात् हमारे लिए विद्यालय के प्रबन्धन एवं प्रशासन से सम्बन्धित शिक्षक के कार्यों को स्पष्ट करना सरल हो जायेगा।

प्रबन्धक एवं प्रशासक के रूप में शिक्षक के कार्य:-

शिक्षा देना:-

शिक्षक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है छात्रों को अपने विषय का ज्ञान प्रदान करना तथा उन्हें इस प्रकार की शिक्षा देना कि उनके पूरे व्यक्तित्व का विकास हो सके।

संगठन करना:-

शिक्षक को कक्षा के स्तर पर शिक्षा का संगठन सुनिश्चित करना होता है। कक्षा के छात्रों के लिये विषय के अनुसार पुस्तकों की व्यवस्था, शिक्षण गतिविधियों का संचालन, प्रतियोगिताओं का आयोजन, पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आयोजन तथा शिक्षण सामग्री की उचित व्यवस्था का ध्यान रखना होता है। इसके अतिरिक्त कक्षा में चल तथा अचल संसाधनों की पूरी व्यवस्था तथा उसकी देख-रेख शिक्षक का ही उत्तरदायित्व होता है।

निरीक्षण करना :-

शिक्षक को छात्रों के दैनिक शिक्षण कार्यों का निरीक्षण करना होता है। उनका दैनिक गृह कार्य, कक्षा का कार्य, प्रतिदिन की उपस्थिति तथा समय से विद्यालय में आवागमन इन सब बातों का ध्यान शिक्षक को ही रखना होता है। इसके अतिरिक्त छात्रों के लिये प्रयोगशालाओं का आयोजन करना तथा अन्य सांस्कृतिक तथा सामाजिक गतिविधियों का आयोजन कर छात्रों के व्यक्तित्व विकास का निरीक्षण करना भी शिक्षक का कार्य होता है।

अनुशासन:-

विद्यालय में अनुशासन बनाये रखना प्रत्येक शिक्षक का कत्र्तव्य होता है। इस कार्य में वह प्रधानाध्यापक को अपना पूरा सहयोग देता है तथा कक्षा में शिक्षण कार्य अनुशासित रूप से पूर्ण हो सके इस बात का पूरा ध्यान रखता है।

मूल्यांकन तथा अभिलेख रखना:-

छात्रों की शैक्षिक प्रगति तथा योग्यता का मूल्यांकन करना भी शिक्षक का कार्य होता है। इसके लिये वह समय-समय पर कक्षाओं में विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं का आयोजन करता है।

परीक्षाओं के आयोजन तक ही शिक्षक का कार्य समाप्त नहीं होता है, उसे इस मूल्यांकन का नियमित अभिलेख भी रखना होता है। इस प्रकार उसको छात्रों के बारे में, उनकी रूचियों, भावनाओं और सफलताओं का काफी ज्ञान हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसे छात्रों की उपस्थिति का रजिस्टर, अन्य क्रियाओं सम्बन्धी रजिस्टर तथा छात्रों के प्रवेश लेने तथा छोड़ने का रजिस्टर भी शिक्षक को रखना होता है।

मार्गदर्शन:-

शिक्षक को छात्रों की बुद्धि तथा उनकी मानसिक योग्यता के आधार पर न केवल विद्यालय के पाठ्यक्रम को समझने अपितु भविष्य के लिये उपयुक्त विषय चुनने तथा अपने लिये भविष्य की योजनाएँ तैयार करने हेतु सहायता प्रदान करनी होती है।

शिक्षक मूल्यांकन के माध्यम से कक्षा के सभी छात्रों की बुद्धि तथा उनकी शारीरिक तथा मानसिक क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त करता है। तत्पश्चात इसी ज्ञान का उपयोग कर मनोवैज्ञानिक विधियों की सहायता से वह छात्रों को पाठ्यक्रम को समझने के लिये अनेक गतिविधियों का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त वह छात्रों का मार्गदर्शन कर आगे की कक्षाओं के लिये विषय चुनने तथा भविष्य में उन्हें व्यवसाय चुनने में भी सहायता प्रदान करता है।

आयोजन:-

वैसे तो यह कार्य मुख्यतः प्रधानाध्यापक का होता है, परन्तु प्रधानाध्यापक अपनी सहायता हेतु इस कार्य का विभाजन शिक्षकों के मध्य कर उनका निरीक्षण करता है। आयोजन के अन्तर्गत शिक्षक के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

(1) अध्यापक को पाठ्यक्रम की ठीक ढंग से व्यवस्था करनी होती है। उसे पाठ्यक्रम को महीनों तथा हफ्तों में बाँटकर पढ़ाना होता है।

(2) उसे श्रव्य-दृश्य साधनों और अध्यापन-विधियों के प्रयोग करने की व्यवस्था करनी होती है। उसे मनोवैज्ञानिक रूप से इन सब विधियों का प्रयोग शिक्षण कार्य में सभी छात्रों की मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता को ध्यान में रखकर करना होता है।

(3) इसके अतिरिक्त उसे विद्यालय में आयोजित होने वाली पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ तथा अन्य क्रियाओं तथा प्रतियोगिताओं में भी अपना योगदान देना होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि एक प्रधानाध्यापक तथा शिक्षक सभी मिलकर विद्यालय के सफल संचालन तथा प्रशासन में अपना योगदान देते हैं तथा अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं। प्रधानाध्यापक जहाँ विद्यालय का प्रतिनिधित्व करता है, सभी शिक्षक उसके अधीनस्थ रहकर अपना कार्य करते हैं।

6.4 सारांश

विद्या का घर 'विद्यालय' एक संस्था है। किसी भी दूसरी संस्था की ही भाँति विद्यालय को भी संचालित करने के लिए प्रबन्धन एवं प्रशासन की आवश्यकता पड़ती है।

जिस प्रकार एक पहिया अपनी धुरी एवं अरों के माध्यम से संचालित होता है ठीक उसी प्रकार एक विद्यालय का प्रबन्धन एवं प्रशासन प्रधानाध्यापक तथा अध्यापकों के माध्यम से संचालित होता है।

विद्यालय का प्रधानाध्यापक एक कुशल शिक्षक, सफल नियोजक एवं पर्यवेक्षक तथा सक्रिय नेता होता है। संगठन कार्य में प्रधानाध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उसे अपने विद्यालय में मानवीय सम्बन्धों की स्थापना करनी होती है। विद्यार्थियों को निर्देशन देना होता है तथा अनुशासन स्थापना के लिए महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। विद्यालय के आर्थिक प्रबन्धन में भी प्रधानाध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

यद्यपि प्रधानाध्यापक विद्यालय का मुखिया होता है तथापि शिक्षकों की सहायता के बिना एक विद्यालय का सफल प्रबन्धन एवं प्रशासन असम्भव कार्य है। अध्यापक विद्यार्थियों को शिक्षा देने के साथ-साथ विद्यालय के संगठन, निरीक्षण एवं अनुशासन स्थापना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विद्यार्थियों को निर्देशन देने, उनका मूल्यांकन करने, अभिलेखों का रख-रखाव करने तथा विभिन्न आयोजनों में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

6.5 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विद्यालय के प्रबन्धन तथा प्रशासन में प्रधानाध्यापक की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. शिक्षक को शिक्षण कार्य के अतिरिक्त किन-किन भूमिकाओं का निर्वहन करना होता है।
3. अनुशासन स्थापना में प्रधानाध्यापक एवं अध्यापक की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
4. कक्षा कक्ष प्रबन्धन में शिक्षक को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इकाई 7 शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 शैक्षिक नियोजन
7.4 शैक्षिक प्रबन्धन
7.5 शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के विविध आयाम
7.6 प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक प्रबन्धन एवं नियोजन
7.7 माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रबन्धन एवं नियोजन
7.8 उच्च स्तर पर शैक्षिक प्रबन्धन एवं नियोजन
7.8 सारांश

7.1 प्रस्तावना

हमारे जीवन में प्रत्येक वह कार्य सफल व सुफल होता है जिसे हम नियोजित रूप से करते हैं। अब चाहे वह कार्य साधारण हो अथवा विशेष। शिक्षा हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हमारे जीवन का अधिकांश भाग शिक्षा प्राप्त करने में ही बीतता है। शिक्षा हमारे जीवन की दिशा एवं दशा भी निर्धारित करती है। अतः सफल जीवन के लिए शैक्षिक नियोजन अनिवार्य हो जाता है।

उचित प्रबन्धन के अभाव में श्रेष्ठ नियोजन भी अर्थहीन हो जाता है। किसी भी कार्य की योजना बनाने के बाद योजना के अनुसार हमें विशेष प्रबन्ध करने होते हैं। यदि हमारी प्रबन्धन की प्रक्रिया उचित नहीं है तो नियोजन पर किये गए हमारे सारे प्रयास निष्फल होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि किसी भी दूसरे क्षेत्र की तरह शिक्षा के क्षेत्र में भी नियोजन एवं प्रबन्धन की महती आवश्यकता है।

आगे की पंक्तियों में हम शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

7. 2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के पश्चात्

- हम ''शैक्षिक नियोजन'' शब्द से परिचित हो सकेंगे।
- हम 'शैक्षिक प्रबन्धन' शब्द से परिचित हो सकेंगे।
- हम 'शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन' के विविध आयामो से परिचित हो सकेंगे।

- हम प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर 'शैक्षिक प्रबन्धन एवं नियोजन' के विषय में जान सकेंगे।
- हम विविध स्तरों पर 'शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन' के महत्व से अवगत हो सकेंगे।
- हम आवश्यकतानुसार 'शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन' में सहभागिता कर सकेंगे।

आगे की पंक्तियों में हम शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

7.3 शैक्षिक नियोजन : –

'शैक्षिक नियोजन' वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की अनिवार्य शर्त है। शैक्षिक नियोजन को समझने से पूर्व हमें नियोजन शब्द का अर्थ समझना होगा।

नियोजन का अर्थ:-

नियोजन का साधारण अर्थ किसी कार्य की योजना बनाने से है। जब हम किसी कार्य को पूर्ण गम्भीरता से सम्पादित करना चाहते हैं तथा उससे श्रेष्ठ परिणामों की अपेक्षा रखते हैं तब हम इस बात की विधिवत व लिखित रूप में योजना बनाते हैं कि हम क्या कार्य करने जा रहे हैं? उक्त कार्य को करने के पीछे हमारे उद्देश्य क्या हैं? हम अपने अपेक्षित कार्य को किस प्रकार सम्पादित करेगे? उक्त कार्य सम्पादन के लिए हमें किस प्रकार के संसाधनों की आवश्यकता होगी? इन संसाधनों की व्यवस्था कहाँ से होगी? कार्य सम्पादन में किस प्रकार की बाधाएं आ सकती हैं? इन बाधाओं का निवारण कैसे होगा? कार्य सम्पादन के क्या परिणाम प्राप्त होंगे? कार्य सम्पादन के उपरान्त भविष्य में किस प्रकार की योजना की आवश्यकता होगी? आदि प्रश्नों के विस्तृत व लिखित उत्तर देने की प्रक्रिया को ही हम ''नियोजन'' इस नाम से सम्बोधित कर सकते हैं।

शैक्षिक नियोजन का अर्थ

जैसा कि हम ऊपर की पंक्तियों में जान चुके हैं कि किसी महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिये विस्तृत कार्य योजना बनाने को ''नियोजन करना'' कहते हैं। यही कार्य जब हम शिक्षा के लिये करते हैं तब इसे ''शैक्षिक नियोजन'' कहा जाता है।

आइये इस बात को थोड़ा विस्तार से समझें।

भारत सहित विश्व के प्रत्येक देश में शिक्षा व्यवस्था को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा है। आधुनिक समाज को हम तकनीकि रूप से जटिल समाज की संज्ञा दे सकते हैं। तकनीकि जटिलता का सही आकलन एक दुष्कर कार्य है। तथापि ''भविष्य की शैक्षिक आवश्यकताओं का सही-सही आकलन करके तदनुकूल संसाधनों की व्यवस्था करते हुए, उत्तम परिणाम प्राप्त करने की प्रत्याशा में लिखित एवं व्यवस्थित कार्य योजना को हम ''शैक्षिक नियोजन'' इस नाम से सम्बोधित कर सकते हैं।''

सुप्रसिद्ध शिक्षाविद डा0 आर0पी0 भटनागर ने शैक्षिक नियोजन को परिभाषित करते हुए लिखा है- ''शैक्षिक नियोजन को अन्य प्रशासनिक कार्यों से अलग करना कठिन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रयोग प्रशासक को नेता, विनिश्चयकर्ता, परिवर्तन अभिकत्र्ता आदि की भूमिका निभाते हुए करना पड़ता है।''

शैक्षिक नियोजन के चरण:-

शैक्षिक नियोजन को और अधिक स्पष्ट करने के लिये हमें शैक्षिक

नियोजन के विविध चरणों को जान लेना चाहिये। किसी भी राष्ट्र, राज्य अथवा संस्था में शैक्षिक नियोजन करने के लिये हमें निम्नांकित चरणों का अनुगमन करना होता है।

सूचनाओं का एकत्रीकरण:-किसी भी प्रकार का शैक्षिक नियोजन करने से पूर्व हमें सर्वप्रथम विविध प्रकार की सूचनाओं को एकत्र कर लेना चाहिये। इन सूचनाओं को हम शैक्षिक नियोजन करते समय उपयोग में ला सकते हैं।

आवश्यकता का आकलन:-सूचना एकत्रीकरण के पश्चात् हमें इस बात का आकलन करना चाहिए कि आखिर हमारी आवश्यकता क्या है। यह कार्य हम प्राप्त सूचनाओं को आधार बनाकर कर सकते हैं। वस्तुतः जब तक हम अपनी आवश्यकता को नहीं समझते है तब तक हमारे लिये नियोजन का कार्य कठिन होगा। आवश्यकता का आकलन हमें शैक्षिक नियोजन हेतु उपयुक्त आधार प्रदान करता है।

उद्देश्यों का निर्धारण:-शैक्षिक नियोजन करने के लिये हमें प्राप्त सूचनाओं के आधार पर नियोजन के उद्देश्यों का निर्धारण भली-भांति कर लेना चाहिये। उद्देश्य निर्धारण हम जितनी अच्छी प्रकार से कर लेंगे शैक्षिक नियोजन उतना ही उत्तम होगा। क्योंकि किसी भी कार्य का वास्तविक आधार उसका उद्देश्य ही होता है।

सम्भावित समस्याऐं:-उद्देश्य निर्धारण के उपरान्त हमें यह जान लेना चाहिये कि हमारे मार्ग में कौन-कौन सी बाधाऐं आ सकती हैं तथा हम उन बाधाओं का निवारण किस प्रकार कर सकते है। सम्भावित समस्याओं तथा उनके समाधान के विषय में जान लेने पर हमारा नियोजन का कार्य सफलता की सम्भावनाओं से भर जाता है।

स्रोतों की उपलब्धि:-नियोजन कार्य के उपरोक्त चार चरण पूरे कर लेने के पश्चात् हमारे लिये यह जानना आवश्यक हो जाता है कि उक्त कार्य योजना के लिये हमें कितने संसाधनों की आवश्यकता है। हमारे पास कितने संसाधन उपलब्ध हैं? तथा हमें बचे हुए संसाधनों की पूर्ति किस प्रकार करनी होगी? स्रोत अथवा संसाधन तीन प्रकार के हो सकते हैं-

1. मानव संसाधन
2. आर्थिक संसाधन
3. भौतिक संसाधन

कार्य योजना:-शैक्षिक नियोजन का यह सबसे महत्वपूर्ण चरण है। उपरोक्त सूचनाओं के आधार पर हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये बहुत ही सावधानी पूर्वक विस्तृत कार्य योजना बनानी होती है। ध्यान रहे इस चरण में जरा सी असावधानी पूरे शैक्षिक नियोजन को पथ भ्रष्ट कर सकती है। अतः हमें पूरी सावधानी एवं तत्परता के साथ शैक्षिक नियोजन की कार्य योजना का निर्माण करना चाहिये।

प्रबन्धन एवं क्रियान्वयन:-शैक्षिक नियोजन के लिये जितना महत्वपूर्ण चरण कार्य योजना बनाना है उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण उक्त योजना का विधिवत प्रबन्धन एवं क्रियान्वयन करना है। क्रियान्वयन के समय की गई त्रुटि पूरी योजना को अस्त-व्यस्त कर सकती है। अतः हमें शैक्षिक नियोजन के इस चरण में समस्त सहभागियों को सचेत रखना चाहिये। प्रबन्धन एवं क्रियान्वयन को शैक्षिक नियोजन की आत्मा भी कहा जा सकता है।

पुनरीक्षण/मूल्यांकन:-शैक्षिक नियोजन प्रक्रिया का यह अन्तिम चरण है। इस चरण में हम प्रक्रिया के समस्त चरणों का समय-समय पर पुनरीक्षण करते रहते हैं और बदली हुई परिस्थितियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी करते हैं।

7.4 शैक्षिक प्रबन्धन : –

प्रायः प्रबन्धन शब्द को अर्थशास्त्र अथवा वाणिज्य का विषय माना जाता है। किन्तु यह धारणा भ्रामक है। वस्तुतः प्रबन्धन जीवन के प्रत्येक चरण एवं प्रत्येक क्षेत्र का आवश्यक तत्व है। जीवन के जिस क्षेत्र में हम प्रबन्धन की बात करते हैं प्रबन्धन उसी क्षेत्र का विषय हो जाता है जैसे वित्त प्रबन्धन, समय प्रबन्धन, संसाधन प्रबन्धन, शैक्षिक प्रबन्धन आदि।

प्रबन्धन का अर्थ:-

''जेम्स लुण्डे'' ने प्रबन्धन को परिभाषित करते हुए लिखा है '' प्रबन्धन मुख्य रूप से किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिये प्रयासों को नियोजित, समन्वित, अभिप्रेरित एवं नियन्त्रित करने की कला है।''

Management is principally an art of Planning, Organizing, Coordinating, Motivating, the task and efforts of other Persons to realize a specific objective.

प्रबन्धन की उक्त परिभाषा तथा अन्य विद्वानों के विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् हम जान जाते हैं कि प्रबन्धन एक ऐसी कला है जिसमें वैज्ञानिक पद्धतियों का पालन करते हुए व्यक्तियों से कार्य लिया जाता है। कार्य लेने की इस प्रक्रिया में नियोजन, संगठन, प्रशासन, निर्देशन एवं नियन्त्रण सम्मिलित हैं। प्रबन्धन की प्रक्रिया में प्रबन्धक को मानवीय, भौतिक एवं आर्थिक संसाधनों का प्रबन्धन करना होता है।

शैक्षिक प्रबन्धन का अर्थ:-

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। व्यक्ति के सन्दर्भ में यह प्रक्रिया व्यक्ति के जीवन पर्यन्त चलती है तथा राष्ट्र एवं समाज के सन्दर्भ में यह प्रक्रिया राष्ट्र एवं समाज के जीवन पर्यन्त चलती है। जीवन पर्यन्त चलने वाली इस प्रक्रिया की व्यवस्था करने हेतु प्रशासक के रूप में निर्णय लेने वाले एक व्यक्ति अथवा संस्था की आवश्यकता होती है।

शिक्षा से सम्बन्धित विविध प्रकार के कार्यों के सम्बन्ध में निर्णय लेना, उन निर्णयों को लागू करना तथा निर्णय से प्राप्त परिणाम की जिम्मेदारी लेना शैक्षिक प्रबन्धन कहलाता है। एक अच्छे शैक्षिक प्रबन्धन के अन्तर्गत हम उपलब्ध न्यूनतम संसाधनों के उपयुक्ततम उपयोग के द्वारा अधिकतम श्रेष्ठ परिणामों को प्राप्त करने का प्रयास

करते हैं। शैक्षिक प्रबन्धन की इस प्रक्रिया में मानव रूपी संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ विकास करने का प्रयास किया जाता है।

शैक्षिक प्रबन्धन मूल रूप से एक उद्देश्यपूर्ण व्यावहारिक क्रिया है। इस क्रिया में हम उपलब्ध संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग करके मानव को समाज की अपेक्षाओं और आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का प्रयास करते हैं।

शैक्षिक प्रबन्धन के घटक :-

''शैक्षिक प्रबन्धन'' शैक्षिक नियोजन की अपेक्षा जटिल प्रक्रिया है। वास्तव में 'शैक्षिक नियोजन' 'शैक्षिक प्रबन्धन' का एक घटक है। 'शैक्षिक प्रबन्धन' एक कार्य न होकर विविध कार्यों का जटिल समूह है। इसीलिए इसमें एक प्रबन्धक न होकर प्रबन्धन कार्य की समग्र व्यवस्था के लिये प्रबन्धकों का एक समूह सम्मिलित रूप से अपने कार्यों का निष्पादन करता है। शैक्षिक प्रबन्धन के विविध घटक निम्नांकित हैं -

शैक्षिक नियोजन:-

'शैक्षिक नियोजन' 'शैक्षिक प्रबन्धन' का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है यह शैक्षिक प्रबन्धन का प्रथम चरण भी है। शैक्षिक नियोजन के बिना शैक्षिक प्रबन्धन का कार्य आरम्भ ही नहीं किया जा सकता।

शैक्षिक प्रबन्धन के इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक शैक्षिक नियोजन पर हम पीछे के पृष्ठों में पर्याप्त चर्चा कर चुके हैं। अतः यहां इस विषय पर अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

शैक्षिक संगठन:-

शैक्षिक संगठन शैक्षिक प्रबन्धन का द्वितीय चरण है। 'संगठन' शब्द को परिभाषित करते हुए इसे हम 'व्यवस्थित ढांचा' कहकर सम्बोधित कर सकते हैं। संगठन के द्वारा हम व्यवस्था को विभाजित और व्यवस्थित कर सकते हैं। 'लूथर गुलिक' संगठन को परिभाषित करते हुए लिखते हैं -

संगठन सत्ता का औपचारिक ढांचा है, जिसके द्वारा किसी औपचारिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कार्यों को विभाजित तथा निर्धारित किया जाता है और उनका समन्वय किया जाता है।

शैक्षिक नियोजन को कार्यरूप में परिणित कर शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक संगठन की आवश्यकता होती है जिसे हम शैक्षिक संगठन कहते हैं। यद्यपि भारत का शैक्षिक संगठन बहुत पुराना है तथापि अपनी परिवर्तनशील प्रकृति के कारण यह आज भी नवीन है।

शैक्षिक संगठन औपचारिक व अनौपचारिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। औपचारिक संगठन व्यवस्थित होता है तथा सत्ता द्वारा गठित एवं मान्यता प्राप्त होता है। इसमें प्रत्येक स्तर पर अधिकार एवं उत्तरदायित्व स्पष्टतः परिभाषित होते हैं। मंत्रालय एवं सचिवालय द्वारा लिये गए निर्णयों के अनुपालन के लिये नीचे के स्तर पर अधिकारी एवं कार्यकत्ता उत्तरदायी होते हैं। अनौपचारिक शैक्षिक संगठन का आधार

व्यक्तिगत एवं सामाजिक सम्बन्ध होते हैं। ये सम्बन्ध किसी भी प्रकार के नियमों से बंधे हुए नहीं होते। इस पर भी परस्पर अन्योन्याश्रित होने के कारण अनौपचारिक शैक्षिक संगठन शिक्षा के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। अनौपचारिक संगठन अनेक प्रकार से औपचारिक शैक्षिक संगठन के कार्यों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इसके लिये प्रायः अनौपचारिक सम्बन्धों में जुड़े हुए व्यक्ति बिना किसी फल की प्रत्यांशा में अपना कार्यभार बढ़ाकर औपचारिक शैक्षिक संगठन की कार्यप्रणाली को सरल बना देते हैं।

शैक्षिक प्रशासन:-

अपने शाब्दिक अर्थों में शैक्षिक प्रशासन वह व्यवस्था है जिसमें शिक्षा व्यवस्था का सुचारू संचालन किया जाता है। शैक्षिक प्रशासन को शिक्षा पर शासकीय नियन्त्रण के रूप में भी देखा जा सकता है। शिक्षा प्रशासन का सम्बन्ध शैक्षिक नीति, शैक्षिक नियोजन, शैक्षिक निर्देशन आदि से होता है। शैक्षिक प्रशासन को हम 'वाहय प्रशासन' एवं 'आन्तरिक प्रशासन' दो भागों में बांट सकते हैं। वाहय प्रशासन के अन्तर्गत शैक्षिक नियन्त्रण यथा नियम, नीति, निर्देश आदि एवं आन्तरिक प्रशासन के अन्तर्गत आन्तरिक व्यवस्था से सम्बन्धित निर्णयों को रखा जा सकता है। शिक्षाविद् रामबाबू गुप्त के अनुसार-

''शैक्षिक प्रशासन का तात्पर्य शिक्षा प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने वाली उस व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से काम करने वाले व्यक्तियों, विचारों एवं प्रयासों में सामंजस्य या सम्बन्ध स्थापित किया जाता है और भौतिक तत्व एवं शिक्षा सम्बन्धी अन्य साधनों का इस प्रकार उपयोग किया जाता है कि छात्रों में मानवीय गुणों का विकास प्रभावशाली ढंग से हो।''

इनसाइक्लोपीडिया आफ एजुकेशन रिसर्च के अनुसार -

''शैक्षिक प्रशासन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्यकर्ताओं के प्रयासों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है तथा उपयुक्त सामग्री का मानवीय गुणों का विकास प्रभावशाली ढंग से करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है।''

Educational Administration is the Process of integrating the efforts of personal and of utilizing appropriate material in such a way as to promote effectively the deployment of human qualities. It is not concerned only with the development of children and youth but also with the growth of adults and particularly with the growth of school personnel.

शैक्षिक निर्देशन:-

शैक्षिक निर्देशन भी शैक्षिक प्रबन्धन का एक महत्वपूर्ण घटक है। शैक्षिक प्रबन्धन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान में शैक्षिक निर्देशन सहायक है। शैक्षिक प्रबन्धन के अन्तर्गत सेवाऐं सतत् रूप से चलती रहती हैं। ये सेवायें अधिकारी स्तर से न केवल प्राचार्य/प्रधानाचार्य स्तर तक, अपितु शिक्षकों के स्तर

तक सर्वत्र व्याप्त हैं। अपने पाठ्यक्रम में अन्यत्र शैक्षिक निर्देशन के विषय में आप विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं। अतः यहाँ इतना संकेत पर्याप्त है।

शैक्षिक नियन्त्रण:-

शैक्षिक प्रबन्धन का यह अन्तिम घटक अत्यधिक महत्वपूर्ण है। केन्द्र सरकार राज्य सरकार स्थानीय निकाय, प्रबन्धतन्त्र व समाज मिलकर शैक्षिक नियन्त्रण का कार्य करते हैं। शैक्षिक नियोजन व 'शैक्षिक नियन्त्रण' 'शैक्षिक प्रबन्धन' के दो सिरे हैं। इनके द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को व्यवस्थित व सन्तुलित किया जाता है। सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को अनुशासित करने का कार्य 'शैक्षिक नियन्त्रण' के माध्यम से ही किया जाता है। इस कार्य को करने में लिए शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा निदेशालय व शिक्षा सचिवालय का सदैव ही सक्रिय एवं जागरूक रहना अनिवार्य है। केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा पारित अनेक अधिनियम भी शैक्षिक नियन्त्रण का कार्य करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में समय-समय पर किये जाने वाले अनुसन्धान कार्य भी शैक्षिक नियन्त्रण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। शिक्षा संस्थानों, केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर अध्यापकों को दिया जाने वाला प्रशिक्षण भी 'शैक्षिक नियन्त्रण' में सहायक होता है। इसी प्रकार केन्द्र व राज्य सरकार के आनुषांगिक संगठन आर्थिक अनुदान के माध्यम से 'शैक्षिक नियन्त्रण' का कार्य करते हैं। शैक्षिक नियन्त्रण के द्वारा कार्य संचालन में आने वाली कठिनाइयों, अपव्यय तथा असन्तुलन को दूर किया जाता है समय-समय पर केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा गठित विभिन्न आयोग भी 'शैक्षिक नियोजन' एवं 'शैक्षिक नियन्त्रण' के गुरूतर दायित्व को भली-भाँति संपन्न करते हैं।

7.5 शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

विभिन्न विद्वानों ने शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम निम्नवत् निर्धारित किये हैं।

अन्तः शैक्षिक विस्तार आयाम:-

इस आयाम के अन्तर्गत हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में किसी एक लक्ष्य विशेष को पाने के लिये कितनी मात्रा में व्यवस्था की आवश्यकता है। इस अनुमान के आधार पर हम भविष्य की आवश्यकता का आकलन करते हैं। तत्पश्चात् लक्ष्य विशेष की प्राप्ति हेतु समुचित नियोजन एवं प्रबन्धन करते हैं। यद्यपि नियोजन एवं प्रबन्धन का यह आयाम बहुत सरल एवं स्पष्ट है तथापि इसकी अनेक सीमाऐं भी हैं। जैसे यह आयाम सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था पर कार्य न करके किसी एक लक्ष्य का आकलन करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था के लिये यह एक लम्बी और उबाऊ प्रक्रिया में बदल जाता है। दूसरे यह आयाम केवल भौतिक एवं मानव संसाधनों के परिकलन व आवश्यकता के आकलन का कार्य करता है। मानव संसाधनों की सामथ्र्य एवं योग्यता में वृद्धि के मूल्यांकन का कोई पैमाना इस आयाम में उपलब्ध नहीं है।

जनांकिकीय प्रक्षेपण आयाम :-

यह उपागम भावी शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन के लिये जनसंख्या का अनुमान लगाने में सहायता का कार्य करता है। उदाहरणार्थ यह आयाम इस बात का अनुमान लगाता है कि भविष्य में एक निश्चित समय के

बाद एक निश्चित क्षेत्र में जनसंख्या की स्थिति क्या होगी? उस जनसंख्या की शैक्षिक आवश्यकताऐं क्या-क्या होंगी? तथा उनकी आवश्यकता पूर्ती के लिये कितने अध्यापकों की आवश्यकता होगी?

स्कूल मैपिंग :-

शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन का यह आयाम जनांकिकीय प्रक्षेपण आयाम का उन्नत रूप है। इस आयाम में पूर्वोक्त आयाम के अतिरिक्त विद्यालयों की भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति का भी आकलन किया जाता है। इस आयाम में यह प्रयास किया जाता है कि 1. विद्यालय ऐसे स्थान पर स्थित हो जहाँ अधिकतम जनसंख्या उनसे लाभान्वित हो सके। 2. विद्यालय ऐसे स्थान पर स्थित हो जहाँ परिवहन के अधिकतम साधन सहज ही उपलब्ध हों। 3. विद्यालय का सामाजिक वातावरण राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुकूल हो।

मानव संसाधन विकास आयाम:-

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह आयाम मानव संसाधन के विकास को अपना मुख्य लक्ष्य बनाता है। किसी भी समाज अथवा राष्ट्र का भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक अथवा चारित्रिक विकास उस समाज अथवा राष्ट्र के मानव संसाधन का समुचित विकास करने पर निर्भर करता है। शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धक का यह आयाम अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। मानव संसाधन विकास उपागम के अन्तर्गत इस बात का आकलन किया जाता है कि राज्य के किस क्षेत्र में किस प्रकार के मानव संसाधन की कितनी मात्रा में आवश्यकता है। उदाहरणार्थ यह आयाम आकलन करता है कि चिकित्सा के क्षेत्र में भविष्य की आवश्यकताऐं क्यो होंगी तथा उसके लिये हमें किस-किस प्रकार के कितने चिकित्सक चाहिये। इसी प्रकार इंजीनियर, प्रबन्धक, व्यवसायी, शिक्षक, प्रशासक आदि की आवश्यकताओं का आकलन किया जाता है। तत्पश्चात् इस आयाम में शैक्षिक नियोजन के अन्तर्गत उपरोक्त मानव संसाधनों का विकास किस प्रकार से किया जाऐगा। किस-किस प्रशिक्षण के लिये कितने प्रशिक्षकों की आवश्यकता होगी; कहाँ कितने नए प्रशिक्षण संस्थान खोलने होंगे तथा कितने पुराने प्रशिक्षण संस्थानों का उन्नतिकरण करना होगा आदि बातों का नियोजन किया जाता है इसी प्रकार उत्तम नियोजन में लगने वाला समय संसाधनों की व्यवस्था तथा आर्थिक आवश्यकताओं का आकलन तथा पूर्ति की व्यवस्था भी नियोजन आयाम के अन्त्रगत कर ली जाती है तत्पश्चात' मानव संसाधन विकास का प्रबन्धन आयाम' अपने कार्य को आरम्भ करता है तथा नियोजन को लागू करने से लेकर उसके प्रशासन, निर्देशन एवं उस पर नियन्त्रण करने तक की प्रक्रिया प्रबन्धन के आयाम के अन्तर्गत संपन्न की जाती है पुनश्च नियोजन एवं प्रबन्धन का यह आयाम अति महत्वपूर्ण आयाम है।

सामाजिक माँग आयाम:-

शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन का यह उपागम मानव संसाधन विकास उपागम से भिन्न है। जहाँ एक ओर मानव संसाधन विकास उपागम में मानव संसाधन की प्रत्येक क्षेत्र में अपेक्षित माँग के अनुकूल नियोजन एवं प्रबन्धन पर बल दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर सामाजिक मांग उपागम में शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन का वास्तविक माँग से कोई सरोकार नहीं होता।

इस उपागम में केवल इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि किसी क्षेत्र विशेष की वर्तमान समय में समाज कितनी माँग कर रहा है। स्वतन्त्रता से पूर्व एवं स्वतन्त्रता के संक्रमण काल में भारतीय समाज शैक्षिक

संपन्नता के प्रति जागरूक नहीं था। किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में शैक्षिक माँग बढी है। इस उपागम के अन्तर्गत क्षेत्र विशेष में शैक्षिक जागरूकता अथवा सामाजिक माँग को आधार बनाते हुए शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन किया जाता है। सामाजिक माँग उपागम का वास्तविक माँग से कोई सम्बन्ध न होकर सामाजिक माँग से सीधा सम्बन्ध होता है जैसे वर्तमान समय में माँग और पूर्ती की चिन्ता किये बिना प्रत्येक अभिभावक अपने पाल्य को इंजीनियर अथवा डाॅक्टर बनाना चाहता है। यही कारण है कि इन दोनों ही क्षेत्रों में बेरोजगारी बड़ी तेजी से फैलती जा रही है। इस उपागम के कारण मानव विकास के अनेक क्षेत्र उपेक्षित भी रह जाते हैं।

प्राप्ति दर अथवा विनियोग आयाम:-

शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन का यह आयाम अपने नाम के अनुकूल शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय को विनिवेश मानता है तथा उससे प्रतिलाभ की अपेक्षा करता है। इस आयाम के अनुसार शैक्षिक तन्त्र देश के अर्थतन्त्र को समृद्ध करने हेतु श्रेष्ठ मानव संसाधन तैयार करता है तथा अर्थतन्त्र इस मानव संसाधन का उपयोग करके राष्ट्र को समृद्ध बनाता है। इस आयाम के अनुसार 'शिक्षा' राष्ट्र का सामाजिक दायित्व न होकर राष्ट्र की समृद्धि का सशक्त साधन है। अतः इसे गौण विषयों में न रखकर सरकार के सबसे प्रमुख कर्तव्यों में रखना चाहिये।

यद्यपि शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन का यह आयाम एक महत्वपूर्ण आयाम है तथापि शिक्षित बेरोजगारी की दशा में यह आयाम असफल हो जाता है। भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थितियों में इस असफलता को स्पष्ट देखा जा सकता है। 10-20 लाख रूपया खर्च करने के बाद इंजीनियरिंग आदि की शिक्षा प्राप्त करके विद्यार्थी 2-3 लाख रूपये प्रति वर्ष की दर से यदि आय प्राप्त करते हैं तो यह धन लागत पर मिलने वाले ब्याज से भी कम है किन्तु वर्तमान समय में राष्ट्र के प्रत्येक कोने में शिक्षित व्यक्तियों की यह दशा देखी जा सकती है। यह आयाम शैक्षिक निवेश में प्राप्ति दर के अनुकूल परिवर्तन का समर्थन करता है जो महत्वपूर्ण होते हुए भी भारत जैसे देश में सम्भव नहीं है।

सामाजिक न्याय आयाम:-

इस आयाम को हम सामाजिक विकास आयाम के नाम से भी सम्बोधित कर सकते हैं। इस आयाम में समग्र समाज के विकास के लिये शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन किया जाता है। यह आयाम इस बात का ध्यान रखता है कि समाज के किसी वर्ग विशेष के साथ अन्याय न हो। भारतवर्ष में महिला तथा समाज के अन्य वर्गों का शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रकार के प्रवेश व नियुक्ति के लिए आरक्षण इसी आयाम के अन्तर्गत प्रदान किया जाता है। इस आयाम के अन्तर्गत शिक्षा और समाज परस्पर अन्योन्याश्रित हो जाते हैं अर्थात सामाजिक विकास शैक्षिक विकास का कार्य करता है तथा शिक्षा समाज को विकसित करने में योगदान देती है। जैसे सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य सामाजिक न्याय है इसी सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के लिये 'शैक्षिक नियोजन' एवं प्रबन्धन करते समय एक निश्चित आयु वर्ग के लिये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया। मध्याहन भोजन तथा शिक्षा के क्षेत्र में चलने वाली इस प्रकार की अन्य अनेक महत्वपूर्ण योजनाऐं सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चलाई जा रही है।

7.6 प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

पीछे के पृष्ठों में हमने शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन के जिन आयामों का वर्णन किया है उनमें से कोई भी आयाम स्वयं में पूर्ण नहीं है। इतना ही नहीं हम निश्चित रूप से शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयामों की संख्या भी निर्धारित नहीं कर सकते। पूर्व वर्णित आयामों के अतिरिक्त अन्य आयाम भी हो सकते हैं। अथवा एक से अधिक आयामों का सम्मिश्रण भी किया जा सकता है।

आगे के पृष्ठों में हम भारत में प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयामों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

एक ओर भारतीय शिक्षा व्यवस्था विभिन्न आक्रमणकारियों के लिये प्रयोगशाला बनी रही तो दूसरी ओर यही व्यवस्था उनके स्वार्थों की पूर्ती का साधन। हिन्दू राजाओं से लेकर अंग्रेज सरकार तक किसी ने भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था की वास्तव में चिन्ता नहीं की; फलस्वरूप भारत में प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था भी दयनीय स्थिति में बनी रही। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में प्राथमिक शिक्षा की भावी योजना बनाते हुए ''सामाजिक न्याय आयाम'' के अन्तर्गत 10 वर्षों में 14 वर्ष तक के बालकों के लिये निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव किया तथा इसके लिये विभिन्न मदों से धन आवंटन की योजना भी बनायी। उक्त कार्य का प्रबन्धन करने के लिए 1957 में अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा परिषद् तथा 1961 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् का गठन किया गया। प्राथमिक शिक्षा की योजना एवं प्रबन्धन को समय-समय पर अवलोकित व संशोधित करने की दृष्टि से 1964 में शिक्षा आयोग का गठन तथा 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को प्रस्तुत किया गया।

संविधान बनने के बाद 36 वर्षों तक निरन्तर डगमगाते कदमों से चलते हुए भारत सरकार अपने पूर्व निर्धारित लक्ष्यों से बहुत दूर बनी रही। अतः योजना एवं प्रबन्धन के समस्त कार्यक्रमों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के द्वारा परिवर्तित कर दिया गया। उक्त नीति के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा हेतु 1987-88 से ''आपरेशन ब्लैक बोर्ड'' नामक अभियान आरम्भ किया गया जो प्राथमिक विद्यालयों में मानवीय व भौतिक संसाधनों की पूर्ति करने वाला था। 1994 में क्च्म्क् जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम भी चलाया गया। यह कार्यक्रम आरम्भ में केवल 7 राज्यों में चलाया गया था तथा यह धीरे-धीरे भारत के अनेक अन्य राज्यों में भी चलाया जाने लगा। बच्चों के लिए विद्यालयों में पुष्टाहार की योजना लागू करने के बाद भी भारत सरकार आज तक 'सामाजिक न्याय' के इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकी।

भारत के राष्ट्रपिता कहे जाने वाले तथा महात्मा की उपाधि से विभूषित शिक्षाविद् मोहनदास करमचन्द गाँधी ने अपने दीर्घकालिक अनुभव एवं अनेक प्रयोगों के पश्चात् स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही ''वर्धा शिक्षा योजना'' के नाम से ख्यात बुनियादी शिक्षा की योजना भारतवर्ष को प्रदान कर दी थी। किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि प्राथमिक शिक्षा के लिये अगणित योजनाऐं बनाकर उनमें बार-बार संशोधन करके तथा अपार धन व्यय करके भी आज तक हम अपने लक्ष्य को नहीं पा सके हैं। वस्तुतः केवल योजना बनाने अथवा धन व्यय कर देने मात्र

से ही कोई लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। अपितु इसके लिये धुन का पक्का होना, लक्ष्य की ओर ईमानदारी से कदम बढ़ाना, समर्पण की भावना होना तथा समुचित रीति से धन का व्यय करना अनिवार्य है।

7.7 माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

स्वतंत्र भारत में माध्यमिक शिक्षा हेतु नियोजन का कार्य करने के लिये 1948 में 'तारा चन्द्र समिति' का गठन किया गया। ताराचन्द समिति ने उक्त कार्य हेतु एक आयोग गठित करने का सुझाव दिया। इसी बीच 1948 में गठित राधाकृष्णन आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन हेतु अनेक उपयोगी सुझाव प्रदान किये।

स्वतंत्रता से काफी पहले 1923 में ही भारत में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन किया जा चुका था जो स्वतंत्रता के बाद केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड कहलाया। यह बोर्ड सम्पूर्ण भारत में एक जैसी माध्यमिक शिक्षा प्रदान करता है। इसे हम शिक्षा का सामाजिक समता आयाम कह सकते हैं। माध्यमिक शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन के लिये 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा 1964 में कोठारी आयोग का गठन किया गया। 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से माध्यमिक शिक्षा का पुनः नियोजन किया गया तथा 1986 की शिक्षा नीति में इस योजना को और अधिक प्रभावशाली बनाया गया।

भारतवर्ष की माध्यमिक शिक्षा में 'सामाजिक न्याय आयाम' के साथ-साथ 'सामाजिक माँग आयाम' का भी ध्यान रखा गया तथा अन्य अनेक आयामों के मिश्रण के साथ भारत के किशोरों में लोकतांत्रिक नागरिकता, व्यावसायिक कुशलता एवं नेतृत्व शक्ति का विशेष विकास करते हुए बालक का सर्वांगीर्ण विकास करना शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित किया गया।

शैक्षिक प्रबन्धन के लिये 'केन्द्रीय शिक्षा संस्थान' 'केन्द्रीय पाठ्यपुस्तक अनुसंधान ब्यूरो' तथा 'राष्ट्रीय अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्' आदि ने अपना-अपना कार्य आरम्भ कर दिया। भारत की सैन्य आवश्यकताओं की पूर्ती के लिये सैनिक स्कूल खोले गए। इसी प्रकार केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों पर आश्रित बच्चों को उत्तम शिक्षा प्रदान करने के लिये 'केन्द्रीय विद्यालय संगठन' की स्थापना की गई।

प्राथमिक शिक्षा की ही भाँति माध्यमिक शिक्षा में भी अनेक बालक विविध कारणों से अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाते। ऐसे विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ''राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय'' की स्थापना की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अन्तर्गत ''शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन'' को अनेक नवीन आयाम प्रदान किये गए। माध्यमिक शिक्षा का आदर्श रूप समाज के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये 1986 में ''नवोदय विद्यालय'' खोले गए। इन विद्यालयों में ग्रामीण पृष्ठभूमि के प्रतिभाशाली बच्चों को प्रवेश देकर उन्हें शिक्षा प्रदान की जाती है। इन आवासीय विद्यालयों के कुछ बच्चे कम से कम 1 वर्ष दूर के राज्यों में अवश्य बिताते हैं। इन विद्यालयों में शिक्षा का समस्त व्यय सरकार वहन करती है। इसे हम शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन का ''प्रतिभा संरक्षक एवं सामाजिक समरसता आयाम'' कह सकते हैं।

सामाजिक न्याय आयाम के अन्तर्गत माध्यमिक स्तर पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यकों के लिये शिक्षा की विशेष व्यवस्था की गई है। इसी आयाम के अन्तर्गत राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना भी लागू की गई है।

माध्यमिक शिक्षा की पाठ्यचर्या में भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, ललित कला, खेलकूद, शारीरिक शिक्षा आदि समस्त विषयों की शिक्षा का प्रावधान किया गया है।

अभी भी भारत में माध्यमिक शिक्षा को लम्बी यात्रा तय करनी है। इसे अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करना है। पाठ्यचर्चा को और अधिक उपयुक्त बनाना है, पूरे देश की माध्यमिक शिक्षा एक जैसी की जानी है, शिक्षकों की कमी को दूर करते हुए उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करना है तथा परीक्षा एवं मूल्यांकन प्रणाली में पर्याप्त सुधार करने हैं।

7.8 उच्च स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के आयाम

19 विश्वविद्यालयों और 452 महाविद्यालयों के साथ स्वतन्त्र भारत में कदम रखते ही भारत सरकार ने उच्च स्तरीय शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन के लिये सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं यशस्वी शिक्षक डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन 1948 में किया। यह आयोग विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के नाम से जाना जाता है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने भारत में उच्च शिक्षा के लिये अद्वितीय आयाम अपनाया। उक्त आयोग ने भारत में उच्च शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करते हुए भारतीय युवाओं को शारीरिक व मानसिक दृष्टि से स्वस्थ बनाने, उनके आनुवांशिक गुणों का विकास करने, उनमें दूरदर्शिता, बुद्धिमानी और विवेक का संचार करने ज्ञान का खोजी व उत्तम प्रबन्धक बनाने, तथा चारित्रिक एवं सांस्कृतिक विकास करने को प्राथमिकता प्रदान की।

उच्च शिक्षा के नियोजन व प्रबन्धन की निरन्तर समीक्षा के लिये भारतीय विश्वविद्यालय संघ की स्थापना की गई जहाँ वर्ष में दो बार अपनी नियमित बैठकों के माध्यम से सभी विश्वविद्यालयों के कुलपति प्रवेश, पाठ्यक्रम, परीक्षा प्रणाली अनुसंधान आदि कार्यों की निरन्तर समीक्षा करते हैं। उच्च शिक्षा में शैक्षिक नियोजन हेतु 1953 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का गठन किया गया। उच्च शिक्षा में शैक्षिक अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन देने एवं सेवाकाल में उच्च शिक्षा के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने की दृष्टि से 1961 में ''शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्'' की स्थापना की गई।

1964 में गठित शिक्षा आयोग, 1968 तथा 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी उच्च शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसी प्रकार इंदिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, तथा राजर्षि टन्डन मुक्त विश्वविद्यालय, उत्तरांचल मुक्त विश्वविद्यालय एकेडमिन स्टाफ कालेज, पाठ्यक्रम विकास केन्द्र आदि उच्च शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारत ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में किसी एक आयाम का अनुसरण करते हुए शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन नहीं किया है अपितु भारतीय उच्च शिक्षा के नियोजन एवं प्रबन्धन में पूर्व वर्णित अनेक आयामों का मिश्रित रूप अपनाया गया है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन को अभी पर्याप्त गति प्रदान करना बाकी है। भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अपार संभावनाऐं है। उच्च शिक्षा के दरवाजे निजी क्षेत्रों के लिये खुल जाने के पश्चात् हमे अपेक्षाकृत अधिक सजग एवं सावधान रहने की आवश्यकता है।

7.8 सारांश

व्यक्ति एवं समाज के विकास के लिये शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन अनिवार्य है। विद्यालय अथवा राज्यकी शिक्षा व्यवस्था की कार्य योजना बनाना 'शैक्षिक नियोजन'; एवं उक्त कार्य योजना को क्रियान्वित करने की प्रक्रिया ''शैक्षिक प्रबन्धन'' कहलाती है। शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन की प्रक्रिया अनेक चरणों में पूरी होती है। शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के अनेक आयाम हैं जिनमें से अन्तः शैक्षिक विस्तार आयाम जनांकिकीय प्रक्षेपण आयाम स्कूल मैपिंग, मानव संसाधन विकास आयाम, सामाजिक न्याय आयाम आदि प्रमुख आयाम हैं।

भारतवर्ष में शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तर पर शैक्षिक नियोजन एवं शैक्षिक प्रबन्धन के ऊपर वर्णित आयामों में से अनेक आयामों को पूर्ण अथवा आंशिक रूप से मिश्रित करके भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल आयाम प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

यद्यपि प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्र भारत में बहुत कार्य हुआ है तथा उचित शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के कारण भारत ने शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति की है तथापि विकासशील देश होने के कारण अभी भारत में शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन के क्षेत्र में कार्य करने की अपार संभावनाऐं उपलब्ध है।

7.9 निबंधात्मक कार्य

1. 'शैक्षिक नियोजन' एवं 'शैक्षिक प्रबन्धन' को परिभाषित कीजिये।
2. ''शैक्षिक नियोजन'' एवं ''शैक्षिक प्रबन्धन'' के विविध आयामों की चर्चा कीजिये।
3. प्राथमिक/माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारत किन समस्याओं का सामना कर रहा है।
4. वर्तमान परिवेश में भारत की प्राथमिक/माध्यमिक अथवा उच्च, शिक्षा के लिये शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्धन का सर्वश्रेष्ठ आयाम निर्धारित कीजिये। अपने निर्णय के समर्थन में उपयुक्त तर्क भी प्रस्तुत कीजिये।

इकाई 8 राज्य में शैक्षिक प्रशासन

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 राज्य के शैक्षिक प्रशासन सम्बन्धी दायित्व
18.3.1 वित्त से सम्बन्धित
18.3.2 नियम निर्माण से सम्बन्धित
18.3.3 निरीक्षण से सम्बन्धित
18.3.4 नियुक्ति से सम्बन्धित
18.3.5 पाठ्यक्रम से सम्बन्धित
8.4 राज्य में शैक्षिक प्रशासन का ढाँचा
18.4.1 मंत्रालय
18.4.2 शिक्षा सचिवालय
18.4.3 शिक्षा निदेशालय
8.5 स्थानीय शिक्षा प्रशासन
8.6 राज्य की बेसिक शिक्षा का प्रशासनिक स्वरूप
18.6.1 बेसिक शिक्षा मन्त्री
18.6.2 बेसिक शिक्षा सचिवालय
18.6.3 sबेसिक शिक्षा निदेशालय
8.7 बेसिक शिक्षा प्रशासन के कार्य
8.8 माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रशासन
8.9 माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के कार्य
8.10 सारांश

8.1 प्रस्तावना

शिक्षा सभी मनुष्यों का जन्म सिद्ध अधिकार माना जाता है। आज के प्रगतिशील तथा आधुनिक समाज में शिक्षा की परिभाषा भी बदल गई है। प्रतियोगिता के इस युग में वास्तविक जीवन के अनुभवों को ही केवल शिक्षा नहीं माना जाता है। आज के युग में स्कूली शिक्षा का भी महत्व है। आज रोटी, कपड़ा और मकान की तरह स्कूली शिक्षा भी मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं का हिस्सा बन गई है। इसी बात को ध्यान में रखते

हुए संविधान के निर्माताओं ने भारत के संविधान में शिक्षा को सभी भारतीय नागरिकों की मूलभूत आवश्यकता घोषित करते हुए इसे सभी नागरिकों का मौलिक अधिकार माना है, तथा देश की सरकार को यह कार्य भी सौंपा है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सभी नागरिकों को समय तथा जरूरत के अनुसार उचित तथा पूरी शिक्षा सुनिश्चित हो।

अब यह देश की सरकार के कत्तव्यों में से एक है कि वह सभी नागरिकों को उचित स्कूली शिक्षा प्रदान करे तथा यह सुनिश्चित भी करे कि इस क्रम में संसाधनों की कमी न हो तथा कोई भी नागरिक अपने इस अधिकार से वंचित न रह जाये।

इस दिशा में आजादी के बाद से अब तक भारत पर शासन करने वाली प्रत्येक सरकार ने ठोस तथा सार्थक कदम उठाये हैं। आजादी के बाद से ही प्रत्येक सरकार इस कोशिश में लगी रही है कि भारतीय समाज के प्रत्येक नागरिक को उचित शिक्षा प्रदान की जा सके तथा समाज में व्याप्त निरक्षरता को समाप्त किया जा सके।

परन्तु इतने बड़े देश में शिक्षा का आयोजन करना सरल कार्य नहीं है। भारत सरकार ने अनेक संशोधनों, नीतियों, समितियों और सुधारों के माध्यम से शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने तथा उसकी पहुँच को विस्तृत करने का प्रयत्न किया है। परन्तु इन संशोधनों तथा नीतियों का क्रियान्वयन बिना कुशल प्रशासन तथा नियोजन के सम्भव नहीं है। केन्द्र में बैठी सरकार के लिए इतने बड़े देश में शिक्षा का प्रशासन स्वंय करना सम्भव नहीं है, अतः कार्य का विभाजन करते हुए प्रत्येक राज्य में शिक्षा का प्रशासन तथा संचालन राज्य सरकारों के कत्तव्यों में शामिल किया गया है। केन्द्र सरकार समय तथा आवश्यकतानुसार शिक्षा नीतियों में बदलाव तथा सुधार करती है, तथा यह राज्य सरकार की जिम्मेदारी होती है कि वह अपने राज्य में उन नीतियों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करे ताकि शिक्षा का संचालन तथा प्रसार सुचारू रूप से चलता रहे।

इस यूनिट में हम एक प्रदेश में शैक्षिक प्रशासन के ढांचे तथा अलग-अलग स्तर पर उनके उत्तरदायित्वों तथा भूमिका के विषय में अध्ययन करेंगे।

8. 2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जान सकेंगे कि शैक्षिक प्रशासन का विभाजन किन-किन स्तरों पर किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्

- हम राज्य के शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्वों के बारे में जान सकेंगे।
- हम इस बात से अवगत हो सकेंगे कि राज्य में शैक्षिक प्रशासन का ढाँचा कितने स्तरों पर विभाजित है।
- हम शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा सचिवालय तथा शिक्षा निदेशालय के कार्यों से अवगत हो सकेंगे।
- हम स्थानीय स्तर पर शैक्षिक प्रशासन के कार्य क्षेत्र से अवगत हो सकेंगे।
- हम राज्य की बेसिक शिक्षा के ढाँचे से अवगत हो सकेंगे।
- हम माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रशासन तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के कार्यों से अवगत हो सकेंगे।

8.3 राज्य के शैक्षिक प्रशासन सम्बन्धी दायित्व

किसी भी राष्ट्र की दिशा, दशा एवं गति का निर्धारण शिक्षा करती है। कोई राज्य किस दिशा में किस गति से आगे बढ़ेगा तथा अपने राष्ट्र एवं विश्व में उसकी क्या स्थिति होगी यह उस राज्य की शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व शिक्षा से सम्बन्धित होता है।

एक राज्य में शैक्षिक प्रशासन के ढाँचे पर चर्चा करने से पूर्व हम उस राज्य के शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्वों को समझने का प्रयास करेंगे।

हम भली-भाँति जानते हैं कि भारत में शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में अन्तिम अधिकार केन्द्र का है तथापि सामान्य परिस्थितियों में केन्द्र इस क्षेत्र में बहुत कम दखल करता है।

किसी भी राज्य के शिक्षा से सम्बन्धित दायित्वों को हम मुख्य रूप से चार भागों में बाँट सकते हैं-

वित्त से सम्बन्धित दायित्व।
नियम निर्माण से सम्बन्धित दायित्व।
निरीक्षण से सम्बन्धित दायित्व।
नियुक्ति से सम्बन्धित दायित्व।
पाठ्यक्रम से सम्बन्धित दायित्व।

8.3.1 वित्त से सम्बन्धित दायित्व

राज्य की समस्त व्यवस्थाओं के संचालन में वित्त की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वित्त के अभाव में किसी भी प्रकार की व्यवस्था का संचालन सम्भव नहीं है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में राज्य सरकार के वित्तीय दायित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

राज्य की शिक्षा व्यवस्था प्रायः तीन स्तरों में विभाजित होती है-
प्राथमिक स्तर
माध्यमिक स्तर
उच्च स्तर

उपरोक्त तीनों स्तरों की शिक्षा व्यवस्था के लिए राज्य अनेक प्रकार से वित्तीय प्रबन्ध करता है। वित्त की व्यवस्था के लिए राज्य सरकार अपने संसाधनों के अतिरिक्त प्रमुख रूप से तीन प्रकार के स्रोतों का उपयोग करती है-

केन्द्रीय अनुदान
स्थानीय निकाय
निजी संस्थायें या व्यक्ति

प्रत्येक राज्य को केन्द्र सरकार के द्वारा पर्याप्त मात्रा में अनुदान मिलते हैं यह अनुदान देने के लिए केन्द्र सरकार की अनेक संस्थायें कार्य करती हैं। वर्तमान में मध्यान्ह भोजन की व्यवस्था केन्द्र सरकार के अनुदान से लागू की जा रही है। इसी प्रकार UGC उच्च शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों को भारी अनुदान प्रदान करता है।

8.3.2 नियम निर्माण से सम्बन्धित दायित्व:-

राज्य की शिक्षा व्यवस्था को चलाने के लिए नियमों एवं कानूनों की आवश्यकता पड़ती है। समय-समय पर इन नियमों में परिवर्तन भी करना पड़ता है। राज्य सरकार आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर नियमों का निर्धारण एवं उनमें संशोधन करती रहती है।

8.3.3 निरीक्षण से सम्बन्धित दायित्व:-

राज्य में शिक्षा की विभिन्न संस्थायें ठीक प्रकार से कार्य कर रही हैं या नहीं यह जानने के लिए राज्य सरकार को निरीक्षण की व्यवस्था करनी होती है। राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों, वि0वि0 आदि का निरीक्षण कराया जाता रहता है।

8.3.4 नियुक्ति से सम्बन्धित दायित्व:-

प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक स्थायी नियुक्तियों का दायित्व राज्य सरकार का है। अपने इस दायित्व की पूर्ति के लिए वह विभिन्न समितियों अथवा आयोगों को माध्यम बनाती है।

8.3.5 पाठ्यक्रम से सम्बन्धित दायित्व:-

यद्यपि उच्च स्तर पर पाठ्यक्रम निर्धारण का दायित्व राज्य सरकार ने विश्वविद्यालयों को दे रखा है तथापि प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम निर्धारण का दायित्व राज्य सरकार ने अपने पास ही रखा है। इसके लिए राज्य सरकार विशेषज्ञों की विभिन्न समितियाँ बनाती है।

8.4 राज्य में शैक्षिक प्रशासन का ढांचा

राज्य में शैक्षिक प्रशासन तीन स्तरों में विभाजित होता है।

मंत्रालय स्तर
सचिवालय स्तर
निदेशालय स्तर

8.4.1 मंत्रालय स्तर:-

राज्य शिक्षा मंत्रालय का मुख्य शिक्षा मंत्री होता है। यह एक केबिनेट स्तर का मंत्री होता है। इसकी सहायता के लिये शिक्षा राज्य मंत्री तथा उप मंत्री होते है। शिक्षा मंत्री जनता का प्रतिनिधि होता है, तथा राज्य विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी भी होता है। शिक्षा मंत्री की अनुपस्थिति में शिक्षा राज्य मंत्री या उप मंत्री उसके कार्यों की देखभाल करते हैं। शिक्षा मंत्री समग्र राज्य के शिक्षा विभागों तथा संस्थाओं का मुखिया होता है। शिक्षा मंत्री के कार्यों तथा उत्तरदायित्वों को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया जा सकता है -

1.वह समस्त राज्य की शिक्षा व्यवस्था का नेता होता है। राज्य की शिक्षा के लिये नेतृत्व प्रदान करना उसका उत्तरदायित्व होता है।

2.वह विधानसभा में उत्तरदायी होता है। शिक्षा के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्न चाहे वह संचालन या प्रशासन से सम्बन्धित हों या नीति निर्धारण से का उत्तर शिक्षा मंत्री को देना होता है।

3.राज्य में शिक्षा के प्रसार तथा शिक्षा के स्तर को ऊंचा बनाने के लिये विधान मण्डल को नीति निर्धारण तथा अन्य मामलों में सुझाव देने का कार्य भी शिक्षा मंत्री का होता है।

4.समस्त राज्य में शिक्षा का समन्वयन करना भी शिक्षा मंत्री का कार्य होता है। यह शिक्षा मंत्री का उत्तरदायित्व होता है कि वह शिक्षा के लिये उचित संसाधनों का प्रबन्ध करे तथा यह भी सुनिश्चित करे कि सभी संसाधनों का प्रयोग उचित रूप से हो सके।

5.राज्य के शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रभावीपन का मूल्यांकन करना भी शिक्षा मंत्री का ही कत्तव्य होता है।

6.इसके अतिरिक्त राज्य के स्थानीय निकायों तथा निजी शिक्षा संस्थाओं को हर प्रकार की सहायता प्रदान करना भी शिक्षा मंत्री का ही कत्तव्य होता है।

7.शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान तथा शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान को बढ़ावा देना तथा सहयोग करना भी शिक्षा मंत्री का ही कत्तव्य होता है।

शिक्षा मंत्री तथा शिक्षा मंत्रालय के कार्यों के क्रियान्वयन में उनकी सहायता के लिये राज्य में दो अन्य अभिकरण भी होते हैं -

8.4.2 शिक्षा सचिवालय:-

शिक्षा सचिवालय राज्य शिक्षा विभाग की नीति निर्माण के लिये गठित की गई शाखा होती है। यह शिक्षा मंत्री को नीतियों के निर्माण में सहायता प्रदान करती है। इसका मुख्य अधिकारी शिक्षा सचिव होता है। इसके अधीन कुछ उप-सचिव तथा सहायक सचिव होते हैं। शिक्षा सचिव का सीधा सम्पर्क शिक्षा मंत्री से होता है। जैसे कि बताया जा चुका है कि शिक्षा सचिवालय का गठन हर राज्य में शिक्षा से सम्बन्धित नीति निर्माण से सम्बन्धित कार्यों के लिये किया जाता है, अतः केन्द्र की नीतियों तथा आदेशों को ध्यान में रखते हुए राज्य के लिए शिक्षा नीति का निर्माण करना तथा नीति निर्माण करते समय राज्य की आवश्यकता तथा संसाधनों की उपलब्धता का ध्यान रखना यह कार्य शिक्षा सचिवालय का ही होता है। शिक्षा सचिव आई0ए0एस0 स्तर का अधिकारी होता है। शिक्षा मंत्री को शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर सलाह देना, सरकारी नियमों के अधीन कार्य कराना, शिक्षा विभाग के अधिकारियों की अनुशासन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना, यह सभी कार्य शिक्षा सचिव के कत्तव्यों के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। राज्य सरकार के सभी आदेश उसी के नाम से निकलते हैं।

8.4.3 शिक्षा निदेशालय :-

शिक्षा निदेशालय राज्य शिक्षा विभाग की कार्यपालिका संस्था है। जहाँ एक ओर शिक्षा सचिवालय राज्य के लिये नीति निर्माण का कार्य करता है, वहाँ शिक्षा निदेशालय, सचिवालय द्वारा निर्मित नीतियों को लागू करने का कार्य करता है। यह सचिवालय तथा राज्य के विद्यालयों को जोड़ने वाली कड़ी का काम करता है। राज्य निदेशालय का सर्वोच्च अधिकारी शिक्षा निदेशक होता है। शिक्षा निदेशक शिक्षा के क्षेत्र में राज्य की प्रमुख

कार्यपालिका शक्ति होता है। वह राज्य की प्राथमिक, माध्यमिक शिक्षा के विकास के लिये भी उत्तरदायी होता है। राज्य के निजी क्षेत्र में कार्य करने वाले संगठनों, स्थानीय निकायों की शिक्षा समस्याओं तथा उनके समाधान के लिये वही उत्तरदायी होता है। इसके अतिरिक्त राज्य में शिक्षा की प्रगति का मूल्यांकन करना, शैक्षिक आवश्यकताओं की सूचनाएँ राज्य सरकार तक पहँुचाना तथा राज्य में प्रचलित शैक्षिक क्रियाकलापों तथा इन पर जन साधारण की प्रतिक्रिया की जानकारी सरकार को प्रदान करना यह सभी कार्य शिक्षा निदेशक के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित किये जा सकते हैं। इन सभी कार्यों का निर्वहन उचित रूप से करने के लिये संयुक्त निदेशक, उप शिक्षा निदेशक, शिक्षा अधिकारी आदि शिक्षा निदेशालय में नियुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार राज्य स्तर पर शैक्षिक प्रशासन का निम्नलिखित रूप से सारांश प्रस्तुत किया जा सकता है –

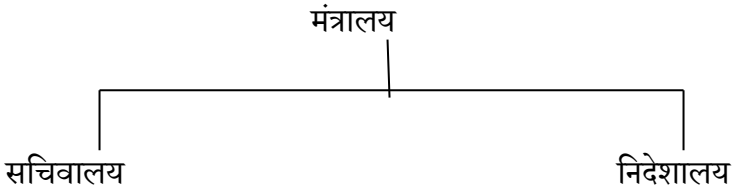

इन सभी स्तरों पर कार्यरत मंत्रियों तथा अधिकारियों की सूची निम्नवत् है -

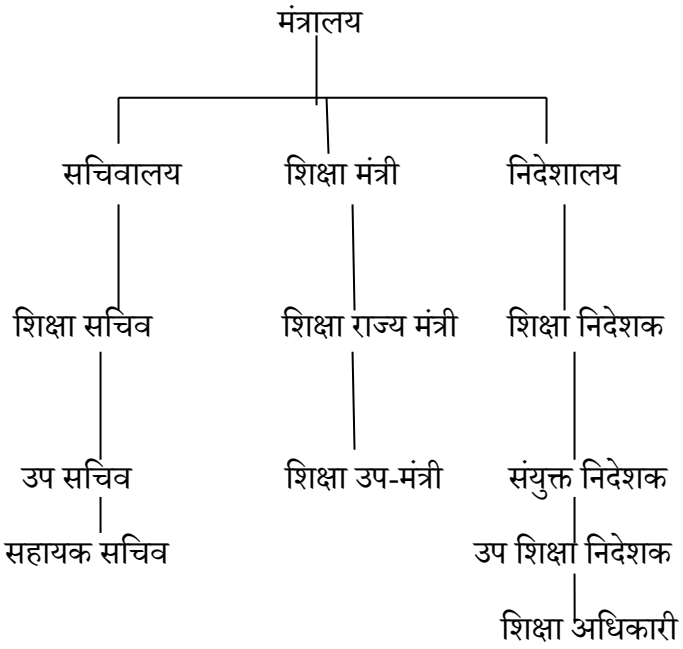

अभी तक हमने यह देखा कि किस प्रकार राज्य में उचित शैक्षिक प्रशासन के लिए तीन प्रशासनिक इकाईयाँ बनायी जाती हैं। परन्तु राज्य भी अपने आप में एक विस्तृत क्षेत्र होता है, तथा राज्य के शैक्षिक प्रशासन के लिये राज्य को पुनः छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित किया गया है, तथा प्रत्येक खण्ड में एक प्रशासनिक ढांचा तैयार किया गया है, जो अपने क्षेत्र में शैक्षिक संचालन के लिये उत्तरदायी होता है।

8.5 स्थानीय शिक्षा प्रशासन : –

यह बात तो सभी को ज्ञात है कि प्रशासनिक स्तर पर राज्य की व्यवस्था मण्डल, जिला तथा ब्लाक में विभाजित की गई है। शिक्षा भी राज्य सरकार की जिम्मेदारी है तथा इसका संचालन और प्रसार भी इन्हीं प्रशासनिक इकाईयों में विभाजित हैं। अब हम शिक्षा के स्थानीय प्रशासन का अध्ययन करेंगे।

विभिन्न राज्यों में स्थानीय निकायों के भिन्न-भिन्न रूप हैं। कई राज्यों में शहरी शिक्षा का दायित्व नगरपालिकाओं के अधीन है, कुछ राज्यों में मात्र बड़ी नगरपालिकाओं का तथा शेष में शहरी शिक्षा सीधे राज्य सरकार के अधीन है, और वह उसका नियन्त्रण जिला शिक्षा अधिकारी के माध्यम से करती है।

ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षा के लिये जिला परिषद् स्थानीय निकाय के रूप में कार्य करते हैं। मुख्यतः राज्यों में इनकी तीन स्तरों की व्यवस्था है। यह तीन स्तर हैं - ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड-स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद्।

इस आधार पर शिक्षा के स्थानीय प्रशासनिक ढाँचे को हम निम्न रूप में चित्रित कर सकते हैं -

शिक्षा का स्थानीय प्रशासनिक ढाँचा

स्थानीय शिक्षा प्रशासन का कार्य क्षेत्र:-

वैसे तो शिक्षा की प्रशासनिक इकाई होने के कारण इनका मुख्य कार्य अपने क्षेत्र या कार्य-क्षेत्र में शिक्षा का उचित प्रशासन करना कहा जा सकता है, परन्तु इनके कार्यों तथा उत्तरदायित्वों को विस्तृत रूप से इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है-

- अपने क्षेत्र के विद्यालयों तथा शिक्षा संस्थानों को मान्यता प्रदान करना।
- मान्यता प्राप्त सरकारी तथा गैर-सरकारी विद्यालयों को आर्थिक सहायता प्रदान करने हेतु अनुदान देना।
- इन विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले शेक्षिक पाठ्यक्रम का निर्माण तथा निर्धारण करना।
- इस पाठ्यक्रम के आधार पर पाठ्य-पुस्तकें स्वीकार करना तथा सरकारी विद्यालयों में इन पाठ्य पुस्तकों की आपूर्ति सुनिश्चित करना।
- प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों का चयन, उनका वेतन, कार्य करने की शर्तें तथा नियम, स्थानांतरण, उनकी संख्या इन सभी बातों की जिम्मेदारी स्थानीय शैक्षिक प्रशासन की होती है। इसके अतिरिक्त विद्यालय के अन्य कर्मचारियों के चयन, नियुक्ति तथा वेतन से सम्बन्धित क्रियाकलाप भी स्थानीय प्रशासन के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित होते हैं।
- इसके अतिरिक्त सरकारी विद्यालयों की वार्षिक अवकाश सूची तैयार करना भी स्थानीय प्रशासन का कार्य होता है।

अब तक आपने राज्य में अलग-अलग स्तरों पर शैक्षिक प्रशासन के बारे में अध्ययन किया। आपने देखा कि किस प्रकार राज्य में विभिन्न स्तरों पर तथा विभिन्न प्रशासनिक इकाईयों में अनेक अधिकारी कार्यरत होते हैं।

वैसे तो शिक्षा के प्रसार तथा उचित संचालन के लिये शासन ने राज्य स्तर पर एक मजबूत प्रशासन व्यवस्था का निर्माण किया है।

आजादी के बाद से ही शिक्षा के प्रसार तथा गुणवत्ता को बढ़ाने के लिये भारत में अनेक प्रयत्न किये गये परन्तु फिर भी शिक्षा के प्रसार के लक्ष्य को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया जा सका। इसमें मुख्य रूप से प्राथमिक शिक्षा का प्रसार शामिल है। भारत के सभी राज्यों में कम से कम प्राथमिक शिक्षा का उचित रूप से प्रसार किया जा सके, इसके लिये बेसिक शिक्षा प्रशासन अलग से स्थापित किया।

राज्य स्तर पर प्राथमिक शिक्षा के लिये 'बेसिक शिक्षा राज्य मंत्री' भी नियुक्त किया गया। इसका उत्तरदायित्व राज्य की बेसिक शिक्षा का प्रबन्धन एवं प्रशासन करना है।

8.6 राज्य की बेसिक शिक्षा का प्रशासनिक स्वरूप

8.6.1 बेसिक शिक्षा मंत्री:- बेसिक शिक्षा मंत्री का कार्य राज्य में बेसिक शिक्षा का उचित प्रबन्धन एवं प्रशासन करना है। इसके लिये राज्य शिक्षा प्रशासनिक संरचना के अनुरूप बेसिक शिक्षा सचिवालय तथा बेसिक शिक्षा निदेशालय का गठन किया गया।

8.6.2 बेसिक शिक्षा सचिवालय:- बेसिक शिक्षा सचिवालय का मुख्य अधिकारी बेसिक शिक्षा सचिव होता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा सचिव की सहायता के लिये उप-शिक्षा सचिव तथा सहायक शिक्षा सचिव आदि नियुक्त किये जाते हैं।

8.6.3 बेसिक शिक्षा निदेशालय:- बेसिक शिक्षा निदेशालय का मुख्य अधिकारी बेसिक शिक्षा निदेशक होता है। इसके अतिरिक्त निदेशालय के कार्य को सुचारू रूप से चलाने तथा निदेशक की सहायता के लिये उप-शिक्षा निदेशक तथा सहायक शिक्षा निदेशक बेसिक को भी नियुक्त किया जाता है।

यह तो हम जान चुके हैं कि शैक्षिक प्रशासन की संरचना में निदेशालय एक कार्यपालिका संस्था होती है। इस कारण इस संस्था को प्रत्येक स्तर पर शिक्षा को उचित व्यवस्था का ध्यान रखना होता है। उसी प्रकार बेसिक शिक्षा निदेशालय स्थानीय स्तर पर शिक्षा के प्रशासन तथा प्रबन्धन के लिये भी जिम्मेदार होता है। इसके लिये जिला स्तर पर जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, ब्लाक स्तर पर सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारी तथा ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत सरपंच ही स्थानीय प्रशासन की देखरेख की जिम्मेदारी लेते हैं।

8.7 बेसिक शिक्षा प्रशासन के कार्य

राज्य में बेसिक शिक्षा के निम्नलिखित कार्य हैं:-

- राज्य के बेसिक शिक्षा विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना तथा मान्यता की शर्तों एवं नियमावली को बनाना।
- बेसिक शिक्षा विद्यालयों में कक्षा 1 से 8 तक के लिए पाठ्यक्रम तैयार करना।
- पाठ्य-पुस्तकों का चयन अथवा रचना करना और उनका प्रकाशन कराना। राज्य के कक्षा 1 से 8 तक की पुस्तकों की रचना तथा प्रकाशन बेसिक शिक्षा विभाग ही कराता है।
- पाठ्य-सामग्री तथा पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का निर्धारण तथा व्यवस्था बेसिक शिक्षा विभाग करता है।
- बेसिक शिक्षा के लिये शिक्षको की शैक्षिक योग्यताओं का निर्धारण तथा नियुक्ति का कार्य बेसिक शिक्षा अधिकारी करता है।
- बेसिक शिक्षा के लिये अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा शिक्षकों के लिये अभिविन्यास पाठ्यक्रमों का आयेजन बेसिक शिक्षा विभाग करता है।

- बेसिक शिक्षा के अनुदान प्राप्त विद्यालयों के शिक्षकों के वेतन का भुगतान भी बेसिक शिक्षा अधिकारी करता है।
- बेसिक शिक्षा के प्रशासनिक, शैक्षिक तथा वित्तीय कार्य, सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारियों द्वारा किया जाता है।
- बेसिक विद्यालयों के पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण का कार्य, सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारियों द्वारा किया जाता है।
- इन विद्यालयों में परीक्षाएँ भी बेसिक शिक्षा अधिकारियों द्वारा आयोजित की जाती हैं।

8.8 माध्यमिक स्तर पर शैक्षिक प्रशासन

राज्य में माध्यमिक शिक्षा का प्रशासन संचालित करने के लिए मंत्रालय, सचिवालय एवं निदेशालय स्तर की व्यवस्थाओं पर हम पूर्व के पृष्ठों में चर्चा कर चुके हैं। जिस प्रकार प्राथमिक शिक्षा के लिए राज्य को प्रशासनिक व्यवस्थायें करनी होती हैं। लगभग उसी प्रकार की व्यवस्थायें माध्यमिक शिक्षा के लिए की जाती हैं। माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्थाओं को संचालित करने के लिए प्रत्येक राज्य में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की स्थापना की गयी है जो सीधे माध्यमिक शिक्षा मंत्री के लिए उत्तरदायी होता है। किसी-किसी राज्य में प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था एक ही मंत्री देखता है।

आगे की पंक्तियों में हम सामान्य रूप से माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के कार्यों की चर्चा करेंगे।

8.9 माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के कार्य

- नये माध्यमिक विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना।
- विद्यालयों में नये विषयों को मान्यता प्रदान करना।
- पाठ्यक्रम का निर्धारण करना।
- पाठ्य पुस्तकों का लेखन कार्य कराना तथा उन्हें प्रकाशित करना।
- परीक्षा संचालन करना।
- परीक्षाफल घोषित करना।
- छात्रों को प्रमाण पत्र प्रदान करना।
- शिक्षकों की योग्यता एवं कार्यक्षमता को बढ़ाने का प्रयास करना।

8.10 सारांश

शिक्षा हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अतः यह राज्य का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है राज्य की शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए राज्य सरकार शिक्षा मंत्री की नियुक्ति करती है। राज्य की आवश्यकता के अनुसार प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च, प्राविधिक, तकनीकी आदि की शिक्षा के लिए अलग-अलग शिक्षा मंत्री भी हो सकते हैं और एक ही मंत्री भी सारी व्यवस्थाओं को देख सकता है। शिक्षा मंत्री की सहायतार्थ सचिवालय एवं निदेशालय की व्यवस्था की जाती है। सचिवालय एवं निदेशालय की सहायता से शिक्षा मन्त्री नियम निर्माण, वित्तीय व्यवस्था, निरीक्षण नियुक्ति एवं पाठ्यक्रम आदि से सम्बन्धित अपने दायित्वों की पूर्ति करता है।

राज्य की शिक्षा व्यवस्था प्रायः तीन भागों में विभाजित रहती है- प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा।

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्य में शैक्षिक प्रशासन का विभाजन किन मुख्य स्तरों पर किया गया है?
2. राज्य में शैक्षिक प्रशासन के ढाँचे को कितने भागों में विभाजित किया गया है?
3. स्थानीय शिक्षा प्रशासन का कार्य क्षेत्र बताइये।
4. माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के संगठन के विषय में बताइये।

इकाई 9 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के कार्य

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 प्राथमिक स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य
9.4 माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य
9.5 उच्च स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य
9.6 सारांश

9.1 प्रस्तावना

यदि हम मानव सभ्यता के विकास पर दृष्टि डालें तो हम पायेंगे कि आरम्भ में मानव तथा अन्य प्राणियों के व्यवहार में कोई विशेष अन्तर नहीं था। किन्तु धीरे-धीरे मानव के बौद्धिक विकास ने उसे आविष्कारक बना दिया तथा वह अन्य प्राणियों की अपेक्षा उन्नत होता चला गया। मानव के बौद्धिक विकास में शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

हमें शिक्षा का व्यवस्थित इतिहास वैदिक काल से प्राप्त होता है। वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था स्वतन्त्र थी। ब्राह्मणों (अत्यन्त विद्वान व्यक्तियों) को गुरूकुल चलाने की स्वतन्त्रता थी। गुरूकुल प्रायः प्रकृति के सानिध्य में बनाये जाते थे। विद्यार्थी गुरूकुल में रहकर ही विद्या अध्ययन करते थे। गुरूकुल में विद्यार्थी केवल विद्यार्थी होता था। वहां राजा और रंक में कोई भेद नहीं था। शिक्षा पर राज्य का कोई नियन्त्रण नहीं था और न ही राजा गुरूकुल की व्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करते थे। वैदिक काल में शिक्षक समाज का सर्वाधिक सम्मानित (राजा से भी अधिक) नागरिक होता था।

बौद्ध काल में शिक्षा के क्षेत्र में राज्य की भूमिका आरम्भ हो गई थी। राज्य की ओर से मठों को आर्थिक सहायता व दिशा निर्देश प्रदान किये जाने लगे थे। मुगल काल में राज्य ने शिक्षा पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया था। उसी समय में अध्यापकों को वेतन मिलना भी आरम्भ हुआ। अंग्रेजों के द्वारा भारत में विधिवत् राज्य स्थापित कर लेने के पश्चात शिक्षा राज्य का दायित्व हो गया व सरकार के नियमो-अधिनियम के द्वारा शिक्षा व्यवस्था संचालित होती रही।

स्वतन्त्र भारत में 1976 तक शिक्षा राज्य का विषय रही। 1976 में संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र सरकार को दखल देने का अधिकार मिल गया। शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित कर लिया गया। शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र सरकार का दखल हो जाने से राज्य सरकार की भूमिका पर केवल इतना सा प्रभाव पड़ा कि किसी विषय पर केन्द्र सरकार व राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों में मतभेद होने की दशा में केन्द्र सरकार का नियम/निर्णय मान्य होगा।

आगे के पृष्ठों में हम शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के कार्यें की चर्चा करेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात छात्र जान सकेंगे कि अब शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्

- छात्र प्राथमिक स्तर पर शिक्षा से सम्बन्धित राज्य सरकार के कार्यों को जान सकेंगे।
- छात्र शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च स्तर पर केन्द्र व राज्य सरकार की सहभागिता के विषय में जान सकेंगे।
- छात्र राज्य में प्राथमिक शिक्षा के प्रशासनिक ढाँचे से अवगत हो सकेंगे।
- छात्र माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार के कार्यों से अवगत हो सकेंगे।
- छात्र माध्यमिक स्तर पर राज्य के प्रशासनिक ढाँचे को समझ सकेंगे।
- छात्र उच्च स्तर पर राज्य सरकार के कार्यों एवं प्रशासनिक ढाँचे से अवगत हो सकेंगे।

9.3 प्राथमिक स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य

प्राथमिक शिक्षा, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का आधार है तथा इसे सर्वाधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिये जैसा कि आप जानते ही हैं कि स्वतन्त्र भारत में संविधान लागू होने के साथ संविधान के अनुच्छेद 45 में 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के किये निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया। इस कार्य के लिये 10 वर्ष की समय सीमा निर्धारित की गई। यद्यपि अपनी समय सीमा में केन्द्र व राज्य सरकारें इस लक्ष्य को प्राप्त न कर सकीं तथापि इस दिशा में सरकारों ने पर्याप्त प्रयास किये। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने के लिये 1957 में "अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा परिषद्" का गठन किया गया। इस परिषद् के संगठन में राज्य सरकारें भी भागीदार होती हैं। इस परिषद् के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर शोध कार्य किया जाता है तथा उन समस्याओं का निदान करने का प्रयास किया जाता है।

राज्य में प्राथमिक शिक्षा का कार्य मुख्य रूप से बेसिक शिक्षा मंत्री का उत्तरदायित्व है। कुछ राज्यों में मंत्री अथवा राज्य मंत्री के स्तर पर प्राथमिक शिक्षा राज्य मंत्री की नियुक्ति अलग से भी की जाती है। इसी प्रकार शिक्षा सचिवालय एवं शिक्षा निदेशालय में शिक्षा सचिव एवं शिक्षा निदेशक की सहायतार्थ शिक्षा उपसचिव प्राथमिक अथवा शिक्षा उप निदेशक प्राथमिक की नियुक्ति भी अलग से की जा सकती है।

राज्य में प्राथमिक शिक्षा का प्रशासकीय ढाँचा

निम्नांकित रेखाचित्र के माध्यम से हम राज्य में प्राथमिक शिक्षा के प्रशासकीय ढाँचे को भलीभाँति समझ सकते हैं।

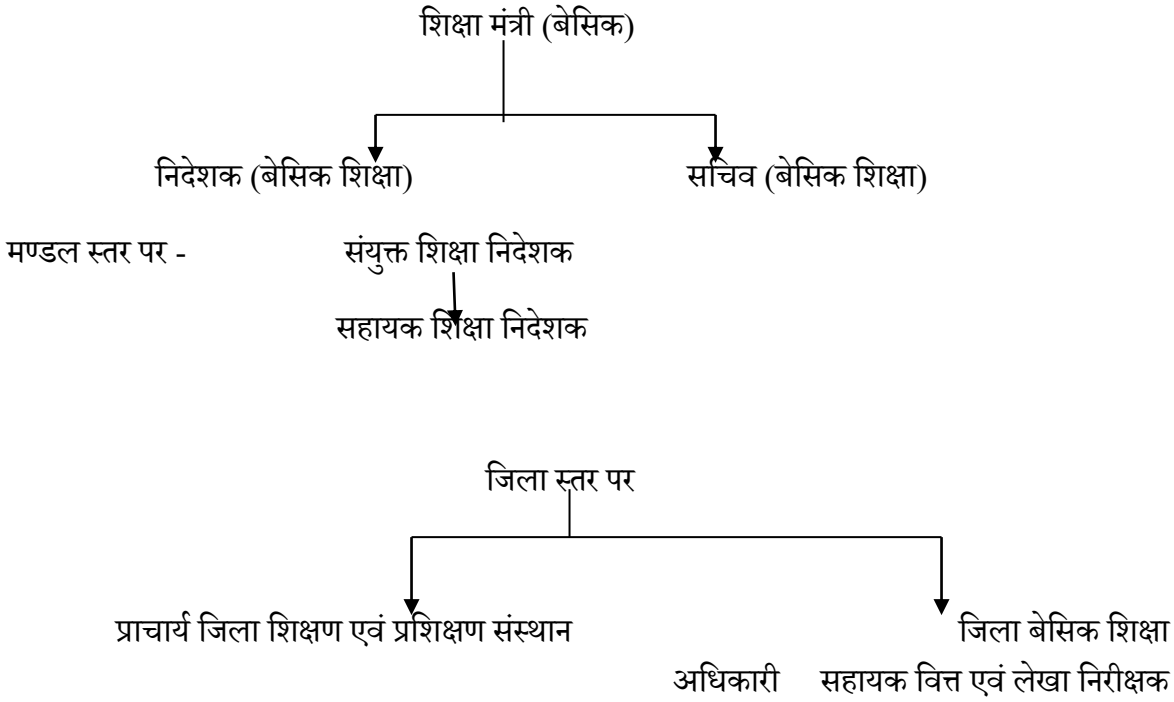

जिला समन्वयक - समेकित शिक्षा

जिला समन्वयक - प्रशिक्षण

जिला समन्वयक - सामुदायिक सहभागिता

जिला समन्वयक - बालिका शिक्षा

जिला समन्वयक - निर्माण

जिला समन्वयक - मध्याहन भोजन

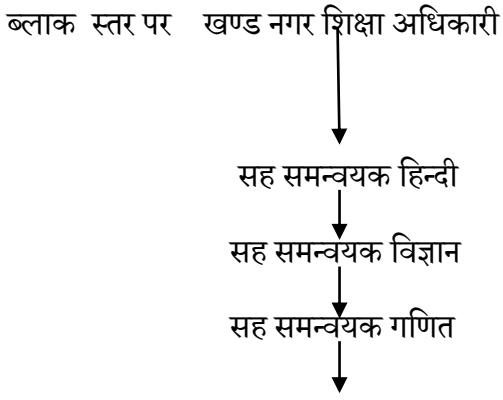

सह समन्वयक सामाजिक विज्ञान

↓

सह समन्वयक अंग्रेजी

नगर पंचायत स्तर पर - संकुल प्रभारी

गांव स्तर पर - प्रधानाध्यापक - अध्यापक

प्रशासकीय ढाँचे के रेखाचित्र से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक शिक्षा हेतु राज्य में एक शिक्षा निदेशक होता है जिसकी सहायतार्थ मण्डल जिला, नगर, ब्लाक और न्याय पंचायत स्तर पर अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ भारत के प्रायः प्रत्येक राज्य में उपरोक्त व्यवस्था लागू है।

प्राथमिक शिक्षा के लिये राज्य सरकार प्रत्येक विद्यालय में अध्यापकों की व एक प्रधानाध्यापक की नियुक्ति करती है। नियुक्ति का कार्य राज्य सरकार "जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान" के माध्यम से करती है। जिला प्रशिक्षण संस्थान अध्यापकों को नियुक्ति से पूर्व पूर्णकालिक प्रशिक्षण भी प्रदान करता है।

एक न्याय पंचायत क्षेत्र की सीमा में आने वाले सभी प्रधानाध्यापकों के ऊपर एक न्याय पंचायत संसाधन केन्द्र समन्वयक होता है जो प्रायः क्षेत्र के सबसे बड़े जूनियर हाईस्कूल का प्रधानाध्यापक होता है। इसकी नियुक्ति जिला प्रशिक्षण एवं शिक्षा संस्थान द्वारा की जाती है। उक्त समन्वयक अपने क्षेत्र के विद्यालयों में जाकर "आदर्श पाठ" प्रस्तुत करता है तथा "शैक्षिक गुणवत्ता" में सुधार के उपाय करता है।

इसी प्रकार नगर/ब्लाक स्तर पर हिन्दी, अंग्रेजी, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान व गणित विषय के आदर्श पाठ प्रस्तुत करने व शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार के उपाय करने के लिये 5 सहायक ब्लाक संसाधन केन्द्र समन्वयक होते हैं। उक्त सभी "खण्ड शिक्षा अधिकारी" के लिए उत्तरदायी होते हैं जो अपने खण्ड में शैक्षिक गुणवत्ता के सुधार के लिये समय-समय पर निरीक्षण करता रहता है। खण्ड शिक्षा अधिकारी' जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी' के लिये उत्तरदायी होता है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी अपने जिले में बेसिक शिक्षा से सम्बन्धित समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व निर्वाह करता है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी सहायक/उप शिक्षा निदेशक के प्रति उत्तरदायी होते हैं जो आगे चलकर शिक्षा निदेशक बेसिक के लिये उत्तरदायी होते हैं।

राज्य सरकार अपने उपरोक्त अधिकारियों, स्थानीय निकाय एवं समाज के साथ मिलकर प्राथमिक शिक्षा के लिये शिक्षकों की नियुक्ति करती है, धन की व्यवस्था करती है; निर्माण कार्य का निरीक्षण करती है; अध्यापकों को प्रशिक्षण देती है; शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता सुनिश्चित करती है, केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित मध्याहन भोजन की व्यवस्था करती है तथा बालिका शिक्षा एवं समेकित शिक्षा पर ध्यान देती है।

प्राथमिक शिक्षा परिषद् के कार्य :-

प्रत्येक राज्य में प्राथमिक शिक्षा के लिये प्राथमिक शिक्षा परिषद् अथवा इससे मिलते जुलते नाम से एक संस्था का गठन किया जाता है जिसके द्वारा राज्य सरकार निम्नांकित कार्य सम्पन्न करती है

- राज्य में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना।
- प्राथमिक शिक्षकों के लिये शिक्षक प्राशिक्षण की व्यवस्था करना।
- राज्य सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करना।
- परीक्षा आदि की व्यवस्था करना।
- विद्यालयों का निरीक्षण करना।

9.4 माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य

'माध्यमिक शिक्षा' शिक्षा की महत्वपूर्ण कड़ी है। यह' प्राथमिक शिक्षा' और' उच्च शिक्षा' को जोड़ने का कार्य करती है। प्राथमिक शिक्षा प्राप्ति की अवस्था में बालक के कोई संस्कार नहीं होते और' उच्च शिक्षा प्राप्ति की स्थिति में बालक के संस्कार दृढ़ हो चुके होते हैं। किन्तु माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते समय बालक किशोरावस्था से युवावस्था की ओर बढ़ रहे होते हैं। इस समय में उनमें संस्कारों को दृढ़ करने की आवश्यकता होती है, अतः माध्यमिक शिक्षा प्राप्ति काल बालक के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण काल है।

माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का प्रशासन:-

जैसा कि हमें विदित ही है कि प्रत्येक राज्य में शिक्षा की व्यवस्था देखने के लिये शिक्षा मंत्री का एक पद होता है। कुछ राज्यों में माध्यमिक शिक्षा के लिये अलग मंत्री का पद भी सृजित किया जा सकता है, कुछ राज्यों में माध्यमिक शिक्षा के लिये राज्य मंत्री की नियुक्ति की जाती है और कुछ राज्यों में शिक्षा मंत्री ही शिक्षा की समस्त व्यवस्था को देखता है। अगले पृष्ठ पर हम राज्य में माध्यमिक शिक्षा के प्रशासनिक ढाँचे को समझने का प्रयास करेंगे।

मुख्य मंत्री

↓

शिक्षा मंत्री

↓

शिक्षा राज्य मंत्री (माध्यमिक शिक्षा)

↓

शिक्षा निदेशक (माध्यमिक)

↓

संयुक्त शिक्षा निदेशक विज्ञान, संयुक्त शिक्षा निदेशक महिला

↓

उप शिक्षा निदेशक (माध्यमिक)

↓

मण्डल स्तर पर माध्यमिक शिक्षा परिषद्

↓

उप शिक्षा निदेशक - प्रशिक्षण

↓

उप शिक्षा निदेशक - शिविर

↓

उप शिक्षा निदेशक - संस्कृत/उर्दू

↓

उप शिक्षा निदेशक - सेवा

|

उप शिक्षा निदेशक - वित्त

↓

सहायक उप शिक्षा निदेशक - सेवा

|

सहायक उप शिक्षा निदेशक - वित्त

|

सहायक उप शिक्षा निदेशक - विज्ञान

|

सहायक उप शिक्षा निदेशक - महिला

जिला विद्यालय निरीक्षक

|

जिला बालिका विद्यालय निरीक्षिका

|

सहायक जिला विद्यालय निरीक्षक

|

सहायक जिला बालिका विद्यालय निरीक्षिका

राज्यों में प्रायः दो प्रकार के माध्यमिक विद्यालय संचालित होते हैं -

1. राजकीय विद्यालय

2. अनुदानित विद्यालय

राजकीय विद्यालयों की समस्त व्यवस्थायें सीधे राज्य सरकार देखती है। जबकि अनुदानित विद्यालयों का प्रबन्धन अपना प्रबन्ध तन्त्र देखता है। राज्य सरकार उन्हें केवल अनुदान व शिक्षकों का वेतन प्रदान करती है।

माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकार के कार्य :-

शिक्षकों की नियुक्ति :-

माध्यमिक शिक्षा के लिए शिक्षक उपलब्ध कराना राज्य सरकार का महत्वपूर्ण कार्य है। इसके लिए राज्य सरकार शिक्षा सेवा आयोग का गठन करके विज्ञापन, लिखित परीक्षा, साक्षात्कार आदि के द्वारा योग्य एवं श्रेष्ठ शिक्षकों का चयन करती है। शिक्षकों को नियुक्ति देने से पूर्व राज्य सरकार उन्हें सेवा शर्तों से अवगत करातीं हैं। कार्य प्रारम्भ करने के पश्चात् शिक्षकों को एक निश्चित समय तक परिवीक्षा पर रखा जाता है। परिवीक्षा अवधि में उनके कार्य एवं कार्य प्रणाली से सन्तुष्ट होने पर ही उन्हें नियमित किया जाता है।

नये विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना :-

जैसा कि आप जानते ही हैं कि राज्य में दो प्रकार के माध्यमिक विद्यालय संचालित किये होते हैं। सरकारी एवं प्रबंधतंत्रीय। यदि समाज के किसी क्षेत्र में समाज सेवी लोगों द्वारा विद्यालय चलाया जा रहा है और वे राज्य सरकार से मान्यता प्राप्त करना चाहते हैं तो राज्य सरकार निर्धारित मानकों पर खरे उतरने वाले विद्यालयों को मान्यता प्रदान करती है।

मान्यता प्राप्त विद्यालयों का उच्चीकरण:-

यदि हाईस्कूल की मान्यता प्राप्त कोई विद्यालय अपने यहां इण्टर की कक्षाऐं संचालित करना चाहता है तो सरकार निर्धारित मानकों के अनुसार उस विद्यालय को उच्च कक्षाओं की मान्यता प्रदान करती है।

विद्यालयों का निरीक्षण करना :-

जिला विद्यालय निरीक्षक के माध्यम से राज्य सरकार समय-समय पर मान्यता प्राप्त विद्यालयों का निरीक्षण करती रहती है। निरीक्षक के माध्यम से वह विद्यालयों में विसंगतियां आने से रोकती है। निरीक्षण के समय शिक्षण कार्य, भौतिक संसाधन, कार्यालय, वित्त एवं लेखा आदि सभी का निरीक्षण किया जाता है।

पाठ्यक्रम निर्धारित करना :-

राज्य में विभिन्न विषयों का पाठ्यक्रम निर्धारित करने का कार्य राज्य सरकार करती है। इसके लिये वह विशषज्ञों की एक समिति बनाती है तथा उस समिति के सदस्य विचार मन्थन करके विभिन्न विषयों का पाठ्यक्रम निर्धारण अथवा उनमें अपेक्षित परिवर्तन करते हैं।

पाठ्य पुस्तकें तैयार करना:-

कुछ राज्यों में पाठ्य पुस्तक तैयार करने का कार्य निजी प्रकाशकों को दे दिया जाता है। वे राज्य सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार पाठ्य पुस्तकें तैयार करते हैं। किन्तु अधिकांश राज्यों में पाठ्य पुस्तक तैयार करने के लिये राज्य सरकार अपनी प्रेस तथा विषय विशेषज्ञों का एक मण्डल बनाती है जो मिलकर पाठ्य पुस्तकों के लेखन और सम्पादन का कार्य करते हैं।

अनुदान देना :-

राज्य में जितने भी गैर सरकारी विद्यालय चल रहे हैं उन विद्यालयों को समय-समय पर भवन निर्माण, भौतिक संसाधन तथा अन्य व्यवस्थाओं के लिए राज्य सरकार अनुदान प्रदान करती है।

राजकीय विद्यालयों का संचालन :-

राज्य में चल रहे समस्त राजकीय इण्टर कालेज व हाई स्कूल के संचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व राज्य सरकार का है।

छात्रवृत्ति प्रदान करना :-

सामाजिक न्याय की दृष्टि से राजकीय व गैर सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत प्रतिभाशाली, निर्धन, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व कुछ अन्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करने का कार्य राज्य सरकार करती है।

परीक्षा :-

राज्य में संचालित सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में हाईस्कूल व इण्टर की परीक्षाऐं संचालित करने का कार्य राज्य सरकार करती है। इस कार्य के लिये राज्य सरकार राज्य में एक बोर्ड के माध्यम से परीक्षाऐं संचालित करती है।

अधिनियम:-

राज्य में शिक्षा व्यवस्था को सुव्यवस्थित एवं सुचारू रूप से संचालित करने के लिये राज्य सरकार विभिन्न प्रकार के अधिनियम बनाने का कार्य भी करती है।

अनुसंधान एवं प्रशिक्षण :-

शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान एवं 'सेवा पूर्व' तथा 'सेवा कालीन' शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य भी राज्य सरकार का है। इसके लिये राज्य मे ''राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्'' का गठन किया जाता है तथा राज्य सरकार उसके माध्यम से अनुसंधान एवं प्रशिक्षण से सम्बन्धित कार्य संपन्न करती है।

अन्य कार्य :-

राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्यों की सूची कभी समाप्त नहीं होती, क्योंकि राज्य में शिक्षा का सम्पूर्ण दायित्व राज्य सरकार का है तथापि उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त राज्य सरकार राज्य में कृषि, उद्योग, वाणिज्य आदि की शिक्षा व्यवस्था भी करती है। इसके अतिरिक्त विद्यालयों का शैक्षिक विकास शैक्षिक योजना बनाना, शैक्षिक परिवीक्षण करना आदि कार्य भी राज्य सरकार ही विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से सम्पन्न करती है।

9.5 उच्च स्तर पर राज्य सरकार के शिक्षा से सम्बन्धित कार्य

भारत में वैदिक काल से ही उच्च शिक्षा की उत्तम व्यवस्था रही है। उच्च स्तर पर व्यावहारिक विषयों का उत्तम ज्ञान देना भारतीय शिक्षा की प्राचीनतम विशेषता है। सम्पूर्ण विश्व में उच्च शिक्षा का मुख्य उद्देश्य 'सत्य की खोज' करना है।

माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद पहले अधिकांश छात्र किसी न किसी व्यवसाय अथवा जीविकोपार्जन के अन्य साधनों में व्यस्त हो जाते थे। केवल मुट्ठी भर छात्र जिनमें ज्ञान की ललक होती थी उच्च शिक्षा की ओर आते थे। किन्तु, अब स्थिति भिन्न है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अधिकांश छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। ज्ञान की ललक न होने पर भी सरकारी अनुदान प्राप्त करने का लालच अनेक नौकरियों में न्यूनतम योग्यता स्नातक, राजनीतिक महत्वाकांक्षा तथा इसी प्रकार के अन्य कारणों से उच्च शिक्षा बढ़ती जा रही है। इतना ही नहीं निजी क्षेत्रों के उच्च शिक्षा में प्रवेश के बाद भी महाविद्यालयों में भीड़ कम नहीं हो रही है। आगे के पृष्ठों में हम राज्य में उच्च शिक्षा के प्रशासन पर चर्चा करेंगे।

राज्य में उच्च शिक्षा का प्रशासन:-

उच्च शिक्षा का कार्य केन्द्र और राज्य सरकारें मिलकर करते हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आर्थिक सहायता देने के लिये केन्द्र ने 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' का गठन किया है। तथापि राज्य में उच्च शिक्षा के प्रशासन को हम निम्नांकित रेखाचित्र के माध्यम से समझ सकते हैं-

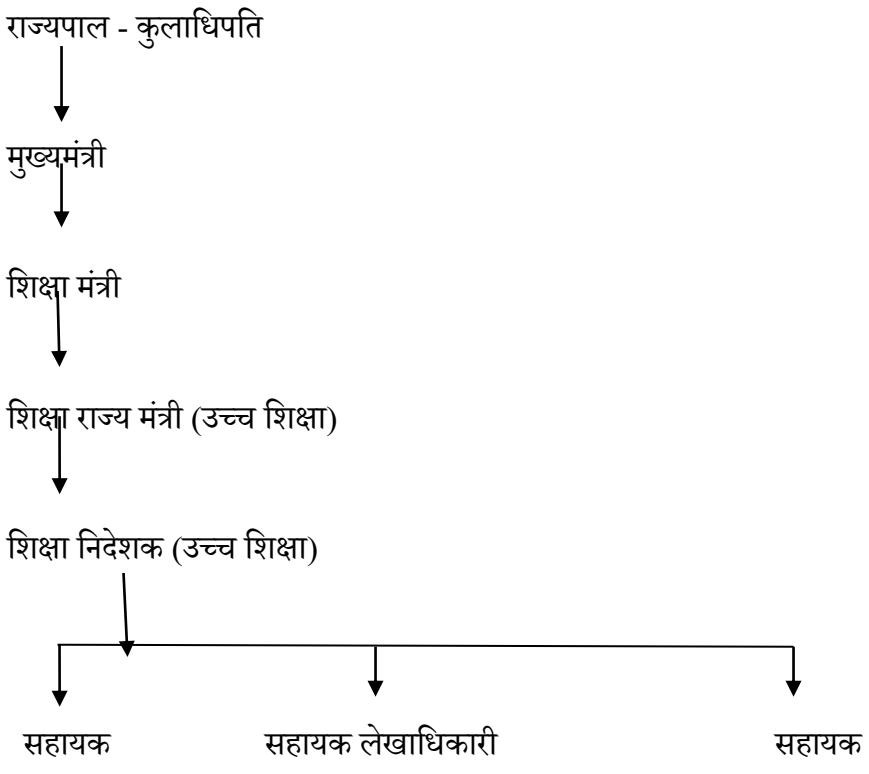

उपशिक्षा निदेशक (वित्त) उपशिक्षा निदेशक (शिविर)

क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी (मण्डल स्तर पर)

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में राज्य सरकार के :-

अग्रंकित बिन्दुओं के अन्तर्गत राज्य सरकार के उच्च शिक्षा से सम्बन्धित कार्यों की चर्चा की जा सकती है।

- उच्च स्तरीय शिक्षण संस्थानों में प्राध्यापकों, प्राचार्यों तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति हेतु मार्गदर्शक सिद्धान्त तैयार करना।
- उक्त नियुक्तियों हेतु आवश्यकतानुसार परीक्षा, साक्षात्कार आदि आयोजित करना। तथा उक्त कार्य के लिये विशेषज्ञों की नियुक्ति करना।
- राज्य के विभिन्न महाविद्यालयों में प्राध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों की संख्या निर्धारित करना तथा उन पदों पर निश्चित प्रक्रिया के माध्यम से नियुक्ति प्रदान करना।
- उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों को वेतन व अन्य भत्ते प्रदान करना।
- शिक्षक तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की सेवा शर्तों का निर्धारण करना।
- उच्च शिक्षा संस्थानों के अभिलेख आदि का निरीक्षण करना।
- महाविद्यालयों को शिक्षणेत्तर गतिविधियों से सम्बन्धित निर्देश प्रदान करना।
- केन्द्र सरकार के निर्देशानुसार राज्य में उच्च शिक्षा नियोजन और समन्वय हेतु 'राज्य उच्च शिक्षा परिषद्' का गठन व संचालन करना।
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त अनुदान को प्राप्त करना व नियमानुसार उक्त अनुदान को व्यय करना।
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जारी मार्गदर्शक सिद्धान्तों के अनुसार उच्च शिक्षा के कार्यक्रम तैयार करना तथा उन्हें लागू कराना।
- उच्च शिक्षा के विकास के लिये योजना बनाना।
- राज्य में नए महाविद्यालय आरम्भ करने के लिये दिशा निर्देश जारी करना।
- नियमानुसार खोले गए महाविद्यालयों को मान्यता एवं सम्बद्धता प्रदान करना।
- पहले से चल रहे महाविद्यालयों में क्षेत्र की आवश्यकता एवं नियमों का अनुपालन करते हुए नए विषयों को मान्यता प्रदान करना।
- सेवारत प्राध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- उच्च शिक्षा में अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहित करना व इसके लिये अनुदान प्रदान करना।

- शिक्षाविदों को विभिन्न पुरष्कार प्रदान करना।
- केन्द्र से अनुदान प्राप्त करना व उपयुक्त रीति से प्राप्त अनुदान का वितरण करना।

इसके अतिरिक्त वे सभी कार्य जो राज्य में उच्च शिक्षा के उन्नयन व संवर्धन के लिये आवश्यक हों, राज्य सरकार के कार्य कहे जा सकेंगे।

उक्त सभी कार्य राज्य सरकार उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, उच्च शिक्षापरिषद्, विश्वविद्यालयों के कुलपति तथा उच्च शिक्षा के लिये नियुक्त विभिन्न पदाधिकारियों के माध्यम से सम्पन्न करती है।

9.6 सारांश

पहले भारत में शिक्षा राज्य का विषय थी। 1976 के संविधान संशोधन के बाद शिक्षा को समवर्ती सूची में डाल दिया गया। राज्यों में सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को मोटे तौर पर हम तीन भागों में बांट सकते हैं। प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च। शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिये राज्य में एक निदेशक होता है जो शिक्षा मंत्री एवं राज्य सरकार के लिये उत्तरदायी होता है। प्रदेश, मण्डल, जिला और स्थानीय स्तर पर विभिन्न पदाधिकारी शिक्षा से सम्बन्धित राज्य सरकार के कार्यें को सम्पादित करते हैं।

विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के कार्यों में मुख्य रूप से शिक्षकों की नियुक्ति, केन्द्र सरकार की शिक्षा से सम्बन्धित योजनाओं को राज्य में लागू करना, केन्द्र सरकार से अनुदान प्राप्त करना, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना, अध्यापकों को प्रशिक्षण प्रदान करना, समय-समय पर विद्यालयों महाविद्यालयों का निरीक्षण करना, वित्त से सम्बन्धित निरीक्षण करना, नए शिक्षण संस्थानों को मान्यता प्रदान करना, स्थापित विद्यालयों का उच्चीकरण, पाठ्यक्रम निर्धारण, पाठ्य पुस्तक प्रकाशन आदि सम्मिलित हैं। राज्य में शिक्षा व्यवस्था को उत्तम प्राकार से संचालित करना राज्य सरकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है, क्योंकि शिक्षा व्यवस्था किसी भी राज्य की अर्थ व्यवस्था एवं सामाजिक ताने-बाने का प्रबल आधार होती है।

9.7 निबंधात्मक प्रश्न

1.'विभिन्न स्तरों पर राज्य सरकार के शैक्षिक कार्य' एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

2. प्राथमिक, माध्यमिक अथवा उच्च स्तर पर आपके राज्य में शिक्षा की कौन-कौन सी समस्याएं हैं? समाधान हेतु सुझाव दीजिये।

इकाई 10 बेसिक शिक्षा परिषद्, माध्यमिक शिक्षा परिषद् एवं विश्वविद्यालय के कार्य संरचना

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 बेसिक शिक्षा परिषद्
    10.3.1 बेसिक शिक्षा परिषद् का गठन।
    10.3.2 बेसिक शिक्षा परिषद् के कार्य।
10.4 माध्यमिक शिक्षा परिषद्
    10.4.1 माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन।
    10.4.2 माध्यमिक शिक्षा परिषद् के कार्य।
10.5 विश्वविद्यालय
    10.5.1 विश्वविद्यालय के प्रकार।
    10.5.2 विश्वविद्यालय का गठन
    10.5.3 विश्वविद्यालय के कार्य
10.6 सारांश
10.7 निबन्धात्मक प्रश्न
10.8 सन्दर्भ

10.1 प्रस्तावना

भारत के प्रत्येक राज्य में शिक्षा व्यवस्था प्रायः तीन भागों में विभक्त है। प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च। तीनों प्रकार की शिक्षा व्यवस्था को देखने के लिये राज्य सरकार ने अलग-अलग संस्थाओं का गठन किया है जो शिक्षा व्यवस्था से सम्बद्ध समस्त क्रियाकलापों को देखती है। इस यूनिट में हम शिक्षा परिषद् बोर्ड आफ स्कूल एजूकेशन एवं विश्वविद्यालय के कार्यों की चर्चा करेंगे।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् हम बेसिक शिक्षा परषिद् का गठन किस प्रकार होता है यह जान सकेंगे। प्रस्तुत इकाई के द्वारा हम

- बेसिक शिक्षा परिषद् के कार्यों के विषय में जान सकेंगे।
- माध्यमिक बेसिक परिषद् एवं उसके गठन के विषय में जान सकेंगे।
- हमें माध्यमिक शिक्षा परिषद् के कार्यों का ज्ञान करा सकेगी।

- विश्वविद्यालय एवं उसके प्रकारों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- विश्वविद्यालय का गठन कैसे होता है यह बता सकेगी।
- विश्वविद्यालय के कार्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

10.3 बेसिक शिक्षा परिषद्

भारत के प्रायः प्रत्येक राज्य में प्राथमिक शिक्षा के संचालन के लिये 'बेसिक शिक्षा परिषद् का गठन किया गया है। प्राथमिक शिक्षा से सम्बद्ध अधिकांश कार्य उक्त परिषद् के माध्यम से ही संपन्न होते हैं।

10.3.1 बेसिक शिक्षा परिषद् का गठन:-

राज्य की बेसिक शिक्षा परिषद् में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ प्रायः निम्नांकित सदस्य होते हैं -

शिक्षा निदेशक - अध्यक्ष

क्षेत्र पंचायत/जिला पंचायत के अध्यक्षों में से काई दो सदस्य - राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट।

एक नगर प्रमुख -राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट।

वित्त विभाग का सचिव।

राज्य शिक्षा संस्थान का प्रधानाचार्य।

माध्यमिक शिक्षा परिषद् का सचिव।

प्राथमिक शिक्षा संघ का अध्यक्ष।

राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट दो शिक्षाविद्।

शिक्षा उप निदेशक-सचिव

प्रायः प्रत्येक राज्य मे उक्त सदस्य मिलकर बेसिक शिक्षा परिषद् के समस्त कार्यों को संचालित करते हैं।

10.3.2 बेसिक शिक्षा परिषद् के कार्य:-

बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा निम्नांकित कार्य सम्पादित किये जाते हैं।

अध्यापको को प्रशिक्षण प्रदान करना।

प्रशिक्षण के लिये साहित्य रचना अथवा साहित्य का चयन करना।

बेसिक तथा जूनियर हाईस्कूल की परीक्षाओं का संचालन करना।

उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को प्रमाण पत्र प्रदान करना।

प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना के लिये मानकों का निर्धारण करना।

राज्य शिक्षा संस्थान का पर्यवेक्षण व नियन्त्रण करना।

प्राथमिक शिक्षा में अनुसन्धान को प्रोत्साहित करना तथा इस हेतु अनुदान का अनुमोदन करना।

राज्य सरकार से अनुदान अथवा आर्थिक सहायता प्राप्त करना।

प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं को समय-समय पर निर्देश प्रदान करना।

आवश्यकतानुसार विभिन्न कार्यों के सम्पादन के लिये उप समितियों का गठन करना।

ऐसे सभी कार्य जो राज्य में प्राथमिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार अथवा राज्य के कल्याण के लिये अनिवार्य है तथा परिषद् के अधिकार क्षेत्र में आते हैं अथवा राज्य सरकार ने अस्थायी रूप से परिषद् के अधिकार क्षेत्र में प्रदान किये हैं; सम्पादित करना।

10.4 माध्यमिक शिक्षा परिषद

माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक और उच्च शिक्षा को जोड़ने वाली कड़ी है। माध्यमिक शिक्षा छात्र जीवन को दिशा प्रदान करती है। वास्तव में राष्ट्र का भविष्य निर्माण करने का महत्वपूर्ण कार्य माध्यमिक शिक्षा ही सम्पादित करती है। प्रत्येक राज्य में माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई है। भारत के अनेक राज्यों में तो स्वतन्त्रता से पूर्व ही माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना कर दी गई थी। मद्रास में 1911, बंगलौर में 1913, नागपुर तथा उत्तर-प्रदेश में 1922, दिल्ली में 1926 तथा अजमेर में 1925 में ही माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना कर दी गई थी। शेष राज्यों में स्वतंन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई।

10.4.1 माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन:-

राज्यों में माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन करते समय प्रायः निम्नांकित सदस्यों को स्थान दिया जाता है -

निदेशक-अध्यक्ष।

राज्य सरकार द्वारा पोषित शिक्षा संस्थाओं के दो प्रधान जिनके नाम राज्य सरकार निर्देशित करे।

राज्य सरकार द्वारा संचालित विद्यालय अथवा विद्यालयों के दो अध्यापक जिनके नाम राज्य सरकार निर्देशित करे।

राज्य प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान का निदेशक।

राज्य शैक्षिक प्रबन्धन एवं प्रशिक्षण संस्थान का निदेशक।

पत्राचार शिक्षा का निदेशक।

व्यावसायिक शिक्षा का निदेशक।

विज्ञान शिक्षा का निदेशक।

मनोविज्ञान ब्यूरो का निदेशक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित शिक्षा से सम्बन्धित दो व्यक्ति।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित शिक्षा से सम्बन्धित दो महिलायें।

माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद् का सचिव।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित एक जिला विद्यालय निरीक्षक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित एक क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक।

माध्यमिक शिक्षा की केन्द्रीय परिषद् का क्षेत्रीय अधिकारी।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित एक महाविद्यालीय शिक्षक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित इंजीनियरिंग कालेज का शिक्षक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित कृषि विश्वविद्यालय का शिक्षक।

राज्य सरकार द्वारा निर्देशित मेडिकल कालेज का एक शिक्षक।

माध्यमिक शिक्षा परिषद् के उक्त सदस्य (पदेन सदस्यों को छोंड़कर) सामान्यतः तीन वर्ष की अवधि के लिये अपने पद पर रह सकेंगे। राज्य सरकार छः माह के लिये उनकी पदावधि को बढ़ा सकती है जो अधिकतम दो बार अथवा एक वर्ष के लिये हो सकती है।

10.4.2 माध्यमिक शिक्षा परिषद् के कार्य :-

पाठ्यक्रम निर्माण:-

हाईस्कूल व इण्टर की कक्षाओं के लिये माध्यमिक शिक्षा परिषद् विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम का निर्माण करती है। इसके लिये वह विषय के विद्वान शिक्षकों की एक समिति गठित करती है तथा यह समिति सम्बन्धित विषय का पाठ्क्रम निर्धारित करती है।

पाठ्य पुस्तक लेखन:-

पाठ्यक्रम निर्धारण के उपरान्त 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य पाठ्य पुस्तक का लेखन करवाना है। इस कार्य के लिये परिषद् विभिन्न विषयों के विद्वानों की एक समिति बनाकर उनको लेखन कार्य का दायित्व सौंपती है।

पाठ्य पुस्तक प्रकाशन:-

पाठ्य पुस्तक लेखन के उपरान्त 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' उनके प्रकाशन व मुद्रण का कार्य भी स्वयं की देखरेख में ही करती है। इसके लिये परिषद् राजकीय मुद्रणालय का प्रयोग करती है। कार्याधिक्य के कारण

माध्यमिक शिक्षा परिषद् राज्य के प्रकाशकों व मुद्रकों को भी यह कार्य सौंप सकती है; किन्तु पुस्तक का आकार, छपाई का प्रकार, कागज एवं पुस्तक के मूल्य पर परिषद् का ही नियन्त्रण होता है।

पाठ्यक्रम/पाठ्य पुस्तक में संशोधन :-

'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' समय-समय पर पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकों का अवलोकन करती रहती है तथा आवश्यकतानुसार विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकों में संशोधन अथवा परिवर्तन का अधिकार रखती है।

शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान करना:-

'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' हाईस्कूल व इण्टर की कक्षाऐं संचालित करने के लिये शिक्षण संस्थाओं को मान्यता भी प्रदान करती है। मान्यता प्रदान करने से पूर्व परिषद् यह सुनिश्चित कर लेती है कि प्रस्तावित संस्था उसके द्वारा निर्धारित मानकों को पूरा कर रही है अथवा नहीं।

निरीक्षण:-

शिक्षण संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने के उद्देश्य से तथा मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं का मानक, लेखा परीक्षा आदि का निरीक्षण करने के उद्देश्य से परिषद् निरीक्षकों की नियुक्ति करती है तथा उनके माध्यम से शिक्षण संस्थाओं का निरीक्षण करती है।

शुल्क वसूलना:-

'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' अपनी शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से उसमें अध्ययनरत् विद्यार्थियों से विभिन्न शुल्क प्राप्त करती है। इसके अतिरिक्त विधि सम्मत अन्य अनेक शुल्क भी प्राप्त करने का कार्य परिषद् करती है।

परीक्षा:-

परीक्षा का आयोजन करना माध्यमिक शिक्षा परिषद् का अति महत्वपूर्ण दायित्व है। परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में नियमित व व्यक्तिगत रूप से अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं के लिये 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' परीक्षाओं का आयोजन करती है। इसके अन्तर्गत परीक्षा प्रश्न पत्र तैयार करना, उन्हें सुरक्षित परीक्षा केन्द्रों तक पहँचाना, परीक्षा केन्द्रों पर केन्द्राध्यक्ष एवं कक्ष निरीक्षकों की व्यवस्था करना, परीक्षा के उपरान्त उत्तर पुस्किाऐं सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना आदि अनेक कार्य आते हैं।

मूल्यांकन:-

परीक्षा कार्य संपन्न हो जाने के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा परिषद् का महत्वपूर्ण दायित्व आरम्भ होता है और वह है उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन। परिषद् विषय के विशेषज्ञ योग्य शिक्षकों द्वारा उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन कार्य संपन्न कराती है। इसके लिये वह उन्हें पारिश्रमिक भी देती है।

परीक्षा परिणाम:-

परीक्षा तथा मूल्यांकन कार्य विधिवत संपन्न हो जाने के पश्चात् 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' का महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ होता है 'परीक्षा परिणाम' घोषित करना। परिषद् विभिन्न समाचार पत्रों के माध्यम से तथा इन्टरनेट के द्वारा परीक्षा परिणाम पूरी सावधानी एवं तत्परता के साथ घोषित करती है।

प्रमाण पत्र प्रदान करना:-

जिन परीक्षार्थियों ने 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' द्वारा आयोजित परीक्षाओं में प्रतिभाग किया होता है उनकी उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन तथा परीक्षा परिणाम की घोषणा के उपरान्त परिषद उन्हें सक्षम प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाण पत्र प्रदान करती है जिसमें छात्र-छात्रा की कक्षा विषय, प्राप्तांक, जन्म तिथि आदि का विवरण दिया होता है। परिषद् द्वारा प्राप्त प्रमाण पत्र प्रामाणिक दस्तावेज की तरह प्रयुक्त होता है।

बजट बनाना:-

'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' वर्ष पर्यन्त स्वयं द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों पर होने वाले व्यय का आकलन करके वार्षिक बजट तैयार करती है। तथा आवश्यकतानुसार राज्य सरकार से अनुदान, ऋण आदि प्राप्त करती है।

अन्य कार्य:-

इसके अतिरिक्त 'माध्यमिक शिक्षा परिषद्' कुछ अन्य कार्यों का सम्पादन भी करती है जैसे समय-समय पर पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकों का पुनरावलोकन, परीक्षा आयोजन के लिये संस्थाओं को मान्यत प्रदान करना, समय-समय पर राज्य सरकार को स्वयं के कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित विचार प्रेषित करना, अंशकालिक अध्यापकों का सेवायोजन आदि।

10.5 विश्वविद्यालय

किसी भी राज्य की वास्तविक शक्ति उसकी उच्च शिक्षा होती है। उच्च शिक्षा तक आते-आते छात्र के संस्कार दृढ़ हो चुके होते हैं। प्रायः छात्र अपने लिये ज्ञान की एक निश्चित धारा का चयन करने में सक्षम होता है अपितु उस धारा का चयन माध्यमिक स्तर पर ही कर चुका होता है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात विद्यार्थी यथा सामथ्र्य स्वयं एवं राष्ट्र की उन्नति हेतु कार्य करता है। उच्च शिक्षा विश्वविद्यालयों के माध्यम से दी जाती है। प्रत्येक राज्य में अनेक प्रकार के विश्वविद्यालय होते हैं जिनमें प्रमुख प्रकार निम्नांकित हैं।

10.5.1 विश्वविद्यालय के प्रमुख प्रकार:-

जैसा कि हम ऊपर की पंक्तियों में स्पष्ट कर चुके हैं कि यहाँ पर विश्वविद्यालयों के कतिपय प्रमुख प्रकारों की ही चर्चा की जा रही है इसके अतिरिक्त भी विश्वविद्यालयों के अनेक प्रकार हो सकते हैं।

सम्बद्धक विश्वविद्यालय:-

ऐसे विश्वविद्यालय से अनेक महाविद्यालय समबद्ध होते हैं तथा विश्वविद्यालय उनसे सम्बन्धित समस्त प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहन करता है।

सम्बद्धक एवं शिक्षण विश्वविद्यालय:-

इन विश्वविद्यालयों से अनेक महाविद्यालय तो सम्बद्ध होते ही हैं किन्तु साथ ही विश्वविद्यालय परिसर में भी कतिपय विशिष्ट स्तर की कक्षाऐं लगती हैं।

आवासीय विश्वविद्यालय:-

ये विश्वविद्यालय एकल होते हैं। इनसे कोई अन्य महाविद्यालय सम्बद्ध नहीं होता। विद्यार्थी को इस प्रकार के विश्वविद्यालय में रहकर अध्ययन करने की सुविधा उपलब्ध होती है।

10.5.2 विश्वविद्यालय का संगठन:-

प्रत्येक राज्य विश्वविद्यालय का संगठन प्रायः एक समान होता है। निम्नांकित पदाधिकारी विश्वविद्यालय के संगठन के अन्तर्गत आते हैं-

कुलाधिपति:-

राज्यपाल राज्य के प्रत्येक विश्वविद्यालय का कुलाधिपति होता है। वह उपस्थित रहने की दशा में दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता करता है तथा विश्वविद्यालय के प्रशासन से सम्बन्धित सर्वोच्च शक्तियाँ उसके अधीन होती हैं।

कुलपति:-

यह विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होता है। इसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। इसकी कार्यावधि 3 वर्ष की होती है तथा यह कुलाधिपति के लिये उत्तरदायी होता है।

प्रति कुलपति:-

यह प्रायः विश्वविद्यालय का वरिष्ठतम आचार्य होता है। कार्य परिषद् अपने विवेक से किसी अन्य आचार्य को भी यह दायित्व सौंप सकती है। प्रति कुलपति कुलपति की अनुपस्थिति में उसके कार्यें का निर्वहन करता है तथा यह कुलपति के प्रति ही उत्तरदायी होता है।

वित्त अधिकारी:-

वित्त अधिकारी भी पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होता है। इसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। यह विश्वविद्यालय के वित्त से सम्बन्धित समस्त कार्यों के लिये उत्तरदायी होता है।

कुलसचिव:-

यह भी राज्य सरकार द्वारा नियुक्त पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होता है। यह कार्य परिषद् का पदेन सचिव होता है तथा कुलपति की ओर से कार्यों का संचालन करता है। विश्वविद्यालय के समस्त प्रशासनिक कार्य का अधिकांश भार कुलसचिव पर होता है।

परीक्षा नियंत्रक:-

कुलसचिव तथा वित्त अधिकारी की ही भाँति परीक्षा नियन्त्रक की नियुक्ति भी राज्य सरकार द्वारा पूर्णकालिक वैतनिक अधिकरी के रूप में की जाती है। यह विश्वविद्यालय की परीक्षा समिति का पदेन सचिव होता है।

कार्य परिषद्:-

कार्य परिषद् विश्वविद्यालय प्रशासन का केन्द्र होती है इसका गठन कुलपति, प्रति कुलपति शिक्षा संचालक, सीनेट के प्रतिनिधि, संकयाध्यक्ष तथा प्राचार्य आदि को सदस्यता प्रदान कर किया जाता है।

विद्या परिषद्:-

यह विश्वविद्यालय की सर्वोच्च प्रशासकीय संस्था है। कार्य परिषद् की ही भाँति इसमें भी विश्वविद्यालय एवं समाज के गणमान्य लोगों का प्रतिनिधित्व रहता है इसमें राज्य सरकार द्वारा नामित सदस्य भी होते है यह विश्वविद्यालय के नीतिगत निर्णय लेने के लिये भी अधिकृत है।

वित्त समिति:-

कुलपति तथा वित्त अधिकारी सहित अनेक सदस्यों वाली यह समिति विश्वविद्यालय के वित्त से सम्बन्धित समस्त विषयों में निर्णय लेने के लिये अधिकृत है।

परीक्षा समिति:-

कुलपति, परीक्षा नियन्त्रक तथा अन्य सदस्यों से युक्त यह समिति विश्वविद्यालय की समस्त सामान्य व विशेष परीक्षाओं के संचालन से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों का निर्वहन करती है।

10.5.3 विश्वविद्यालय के कार्य:-

विश्वविद्यालय के कार्यों को सामान्यतः हम निम्न प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते हैं-

1. सम्बद्ध विभागों एवं महाविद्यालयों के कार्यकलापों पर नियन्त्रण रखना।
2. प्रवेश के नियम बनाना व प्रवेश लेना।
3. शिक्षा सत्र को समुचित रीति से संचालित करना। ,
4. विभिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न कक्षाओं का पाठ्यक्रम निर्धारित करना व उसके लिये पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन/अनुमोदन करना।
5. सम्बद्ध विभागों एवं महाविद्यालयों में परीक्षाओं का आयोजन करना।

6. विषय विशेषज्ञों द्वारा उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करवाना।
7. परीक्षा परिणाम तैयार करना।
8. परीक्षा परिणाम घोषित करना।
9. परीक्षा में सम्मिलित परीक्षार्थियों को सक्षम अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित अंकतालिका प्रदान करना।
10. दीक्षान्त समारोह का आयोजन करना।
11. सफल परीक्षार्थियों को उपाधि प्रदान करना।
12. सम्बद्ध विभागों व महाविद्यालयों से प्रवेश, परीक्षा आदि विभिन्न मदों में शुल्क वसूलना।
13. सम्बद्ध विभागों एवं महाविद्यालयों को अनुदान अथवा आर्थिक सहायता प्रदान करना।
14. सम्बद्ध विभागों एवं महाविद्यालयों की विभिनन गतिविधियों का निरीक्षण करना।
15. सम्बद्ध महाविद्यालयों के प्राचार्यों की बैठक बुलाना तथा आवश्यकतानुसार उन्हें निर्देशित करना।
16. शिक्षकों, कर्मचारियों तथा प्राधिकारियों को समय-समय पर आवश्यकतानुसार विभिन्न मदों में भुगतान करना।
17. पुराने महाविद्यालयों में नए विषयों को पढ़ाने की अनुमति प्रदान करना।
18. नए महाविद्यालयों को सम्बद्धता प्रदान करना।
19. अनुसन्धान कार्य करना तथा इसके लिये सम्बद्ध विभागों/ महाविद्यालयों को प्रोत्साहित करना व उन्हें आवश्यक सुविधाऐं प्रदान करना।
20. ऐसे सभी कार्य सम्पादित करना जो शैक्षिक हित में हों तथा विश्वविद्यालय के अधिकार क्षेत्र में आते हैं।

10.6 सारांश

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति का मूल आधार होती है। मोटे तौर पर शिक्षा को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा। राज्य में शैक्षिक नियोजन के लिये शिक्षा मंत्रालय होता है। प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के अलग-अलग निदेशक होते हैं। राज्य में प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा का कार्य प्राथमिक शिक्षा परिषद् व माध्यमिक शिक्षा परिषद् देखती हैं। ये संस्थाऐं विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रम निर्माण, पुस्तक लेखन, प्रशिक्षण, शुल्क, परीक्षा सम्पादन एवं प्रमाण पत्र देने आदि के समस्त महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करती हैं। उच्च स्तर पर इन कार्यों के करने के लिये विश्वविद्यालयों का गठन किया जाता है। विश्वविद्यालय निजी अथवा राजकीय, आवासीय, सम्बद्धक, संघात्मक आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं। विश्वविद्यालय का प्रधान राज्य का राज्यपाल होता है वह कुलाधिपति कहलाता है। इसके अतिरिक्त

पूर्णकालिक वैतनिक कुलपति, कुल सचिव, वित्त अधिकारी आदि भी विश्वविद्यालय का कार्य देखते हैं। विश्वविद्यालय कार्य परिषद्, विद्या परिषद् वित्त समिति आदि भी होती हैं। विश्वविद्यालय में अनुसन्धान कार्य भी होता है जिसके लिये अलग प्रकोष्ठ होता है।

10.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1.माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन कैसे होता है। राज्य में माध्यमिक शिक्षा परिषद् के कार्य लिखिये।

2.विश्वविद्यालय के विभिन्न कार्य लिखिये यह भी बताइये कि विश्वविद्यालय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कौन सा है? और क्यों?

3.विश्वविद्यालय का कोई एक ऐसा प्रकार बताइये जिसका वर्णन इस पुस्तक में न किया गया हो। अन्य प्रकार के विश्वविद्यालय से उसकी तुलना भी कीजिये।

10.8 सन्दर्भ

1. भटनागर आर0पी0; शैक्षिक प्रशासन; लायल बुक डिपो मेरठ।
2. वर्मा जी0एस0 शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
3. गुप्ता रामबाबू; विद्यालय प्रशासन, संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा; आलोक प्रकाशन लखनऊ।
4. जायसवाल सीताराम; शिक्षा में निर्देशन और परामर्श; अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
5. कोचर एस0के0; स्कूल आर्गेनाइजेशन, यूनिवर्सिटी पब्लिशर्स जालन्धर।
6. कर्ण सिंह; भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास; गोविन्द प्रकाशन लखीमपुर खीरी।
7. लाल रमन बिहारी; भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याऐं; आर0लाल बुक डिपो मेरठ।
8. पारीक महेश कुमार, शैक्षिक प्रबन्ध एवं विद्यालय संगठन, नीलकण्ठ पुस्तक मन्दिर जयपुर।
9. शर्मा आर0ए0; शिक्षा प्रशासन एवं प्रबन्ध; आर0 लाल बुक डिपो मेरठ।
10. शर्मा आर0ए0; भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास आर0लाल बुक डिपो मेरठ।
11. शर्मा आर0ए0; एजूकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मैनेजमॅन्ट;आर0लाल बुक डिपो मेरठ।
12. श्रीवास्तव एस0एन0, एजूकेशन मैनुअल, हिन्द पबिलशिंग हाउस, इलाहाबाद।